सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 43, अंक : 11-12
फरवरी, मार्च - 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चल:।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण यौवन और जीवन (आयु) – सब चलायमान और नश्वर है, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत् है। जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अत: सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण करना चाहिए। पापाचरण कदापि नहीं।

◆ ◆ ◆

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो वहिश्च।।

(कठोपनिषद 2/2/9)

अर्थात् जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूपवाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

◆ ◆ ◆

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 43 अंक : 11/12

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः।
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्ध्येया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञा परां
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्।।

जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्माजी इस जगत के सृजनकर्त्ता हुए, भगवान् विष्णु पालकर्त्ता हुए तथा भगवान शिव संहार करने वाले हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते है और तत्त्वार्थ जानने वाले मुनिगण जिन्हें मूल प्रकृति कहते है— स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले उन जगज्जननी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

फरवरी/मार्च 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	मरण का स्मरण रहे – हंसराज चोपड़ा	10
4.	मनुष्य की सूक्ष्म चेतना से सम्बन्ध – ब्रह्मसिंह गुर्जर	13
5.	सुख टिकता नहीं – दुःख मिटता नहीं – विजय कुमार शर्मा	15
6.	श्री गीतामृत पदावली – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	17
7.	अजपा जप – श्री शिवनाथ मेहरोत्रा	20
8.	गुरु–शिष्य दीक्षा – अजन्म जी	27
9.	स्वामी विवेकानन्द जी का भाषण	29
10.	निष्काम कर्मयोग अपनायें–जीवन सफल बनायें – डॉ. जे.पी. शर्मा	30
11.	2011 – नववर्ष अभिनन्दन – द्वारका प्रसाद शर्मा	39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

क्रिया-योग की साधना एवं उसका अमर फल

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योगदर्शन के समाधिपाद में विविध प्रकार की साधनाओं का वर्णन किया है और सब साधनायें समाधि प्राप्ति के स्तम्भ हैं किंतु कौन किस साधना का अधिकारी है इसका ज्ञान लेना भी एक कठिन सी बात है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में अधिकार – भेद का वर्णन बहुत काफी मात्रा में आता है। वस्तुत: यह ठीक भी है। अधिकार शब्द का अर्थ ही कार्यारम्भ सामर्थ्य है। जो मनुष्य अपनी योग्यता और अधिकार को देखकर कदम बढ़ाता है वह अवश्य ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया करता है। समाधि पाद समाप्त होने के बाद भगवान पतंजलिदेव ने साधनपाद के आरम्भ में ही क्रियायोग का वर्णन किया है। वस्तुत: क्रियायोग अधिकारी एवं अनाधिकारी का स्वत: ही निर्णय कर देता है। इसीलिए भगवान पतंजलिदेव जी ने क्रियायोग का वर्णन विशेष रूप से किया है। यदि किसी व्यक्ति को अनायास ही समाधि रूप उत्तम फल की प्राप्ति हो जाये तो वह उसकी कीमत को नहीं जानता है और कदाचित् उसको प्रयास करना पड़े तो वह जान जायेगा कि यह अनुपम लाभ कितनी मेहनत करने के बाद प्राप्त हुआ है। इसीलिए आवश्यकता है कि मनुष्य समाधिरूप अ-र फल को प्राप्त करने के लिए यम-नियमों की साधना पूर्वक क्रियायोग को अपनाये। भगवान श्री पतंजलि देव ने अष्टांगयोग में वर्णित नियमों की तीन साधनाओं को क्रियायोग का रूप दिया है वह निम्नांकित है-

तप: स्वाध्यायेश्वरप्रणि-धानानि क्रियायोग:।

नातपस्विनो योग: सिद्धयति, अनादि कर्मक्लेशवासना चित्ता प्रत्युपस्थित-विषयजाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तप: सम्भेदमापद्यत इति तपस उपादानं, तच्च चित्तप्रसादनमबाधमानमनेनासेव्यमिति-मन्यते, स्वाध्याय: च प्रणवादिपवित्राणं जप: मोक्षशास्त्राध्ययनं वा, ईश्वरप्रणिधानं च सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा।

अर्थात् जन्म-जन्मान्तर की कर्म वासना से आई अशुद्धि तप के बिना खण्डित नहीं की जा सकती, इसलिए क्रियायोग की साधना में भगवान पतंजलि देव ने सर्वप्रथम तप को ही ग्रहण किया और वह तप भी चित्त के लिए क्लेशकर नहीं होना चाहिए। जैसे आजकल के लोग विविध साधनाओं की पूर्ति के लिए कठिन पंचाग्नि तपते हैं या घोर शीतकाल में जल में बैठकर तपश्चर्या करते हैं, यह सभी साधनायें कठिन क्लेशयुक्त हैं। इसलिए तप के उस स्वरूप को अपनाना चाहिए जिसमें मनुष्य किसी प्रकार की दिक्कत को प्राप्त न हो। जो लोग क्लेशसाध्य

तप करते हैं उनको भगवान ने आसुरी वृत्ति के लोग कहा है जैसे–

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जना:।
दम्भाहंकार संयुक्ता: कामरागबलान्विता:।।
कर्षयन्त: शरीरस्थं भूतग्राममचेतस:।
मां चैवान्त: शरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान्।

अर्थात् काम राग बल का सहारा लेकर दम्भ और अहंकार के साथ शरीरस्थ सभी भूत समूह मन और इन्द्रियों को और अन्त: शरीरस्थ मुझको आकर्षित करते हुए जो घोर तप करते हैं वे लोग आसुरी भावना के हैं। वस्तुत: तप का प्रकार क्या है इसका वर्णन भगवान श्रीकृष्ण ने तीन प्रकार से किया है। शारीरिक तप, वाङ्मय तप और मानस तप।

शारीरिक तप–

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

अर्थात् देव, द्विज, गुरुदेव एवं बुद्धिमान लोगों का पूजन नम्रता, शुद्धि रखना कठिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना एवं मन, वचन कर्म से किसी को भी दु:ख न देना यह शारीरिक तप कहलाता है। जो परमोत्कृष्ट है।

वाङ्मय तप–

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

अर्थात् मीठा और सत्य दूसरों को हितकारी वचन बोले और स्वाध्याय का अभ्यास करे इसी को वाङ्मय तप कहा गया है। मानस तप गीताकार ने इस प्रकार बतलाया है–

मानस तप–

मन: प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रह:।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो – मानसमुच्यते।।

अर्थात् मन की प्रसन्नतापूर्वक सौम्यभाव से मनोनिग्रह करते हुए अन्त:करण की शुद्धि के लिए जो तप किया जाता है वह ठीक रूप से मानस तप कहलाता है। उसमें भी अहंकार को छोड़कर व फल की इच्छा को छोड़कर जो तप करते हैं वह तप सात्विक कहलाता है। इसके अतिरिक्त सत्कार, मान, पूजार्थ और दम्भ के लिए तप किया जाता है वह राजस तप कहलाता है। इसके अतिरिक्त मूढ़तापूर्वक कठोर आग्रह पूर्वक शरीर और मन को पीड़ा देते हुए या दूसरों को नष्ट करने के लिए जो तप किया जाता है वह तामस कहलाता है। भगवान ने ऐसे घोर तपों को छोड़ देना ही उचित समझा है। जो मनुष्य यथार्थ में तपस्वी है वह शास्त्रोक्त फल का भागी अवश्य हो जाया करता है। भगवान पतंजलि देव तप का फल इस प्रकार

लिखते हैं –

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।

अर्थात् तप के द्वारा अशुद्धि नाश हो जाने पर योगी को कायिक सिद्धि अणिमा, महिमा, गरिमा आदि एवं ऐन्द्रिय सिद्धि दूरदर्शन, दूरश्रवणादि अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। जिस व्यक्ति को योग के अष्टविधि ऐश्वर्य अणिमादि एवं दूरदर्शन, दूरश्रवणादि ऐन्द्रिय सिद्धियों की प्राप्ति हो जायेगी वह तो कृतकृत्य हो जायेगा। इसलिए क्रियायोग को साधना व सिद्धि के लिए तप बहुत ही आवश्यक है। उसके साथ–साथ क्रियायोग के अन्तर्गत दूसरी साधना स्वाध्याय की है। शास्त्रोक्त विधि से स्वाध्याय के दो भाग माने गये हैं –

प्रणवादि पवित्राणां जपः स्वाध्यायः मोक्षशास्त्राणां अध्ययनं वा स्वाध्याय।

अर्थात् प्रणव आदि पवित्र नामों का जप करना व मुक्तिदा ता शास्त्रों का पाठ करना स्वाध्याय कहलाता है। हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है –

स्वाध्यायाद्योगमासीत् स्वाध्यायाद्योग मामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय के प्रभाव से साधक योग ध्यान को प्राप्त करे और ध्यानस्थ हो जाने के बाद स्वाध्याय का मनन करे। अर्थात् स्वाध्याय के ध्येय अर्थ का चिन्तन करे। स्वाध्याय और योग ध्यान से जो शक्ति–संचय होगी उसके फलस्वरूप परमात्मा का प्रकाश हो जायेगा।

स्वाध्याय के प्रकार –

स्वाध्यायशील व्यक्ति को चाहिए कि प्रथम अपने इष्टदेव के स्तोत्र का जाप करे। और स्तोत्र जाप के पाठ के अनन्तर गुरु–प्रदत्त अपने मन्त्र का वाणी से जाप करे। वाणी से दो या तीन घण्टे का जाप करे। तीन घण्टे वाणी से जाप कर लेने के बाद फिर वह मन्त्र मन में होने लगता है, और तीन घण्टे मानस जप करने के बाद फिर वह मन्त्र बुद्धि में प्रवेश कर जाता है। और मन्त्र के बुद्धि में प्रविष्ट हो जाने के बाद स्वतः ही समाधि का प्रकाश हो जाता है। इसी कारण स्वाध्याय समाधि का प्रकाशक है। योगदर्शन में स्वाध्याय का फल निम्नांकित सूत्र में लिखा है –

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।

देव, ऋषयः, सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्ये चास्य वर्तन्त इति।

अर्थात् देवता लोग, ऋषि लोग और सिद्ध लोग स्वाध्यायशील व्यक्ति की आँखों के सामने आया करते हैं और उसके काम कर दिया करते हैं। ये स्वाध्याय का उत्तम परिणाम है। स्वाध्याय की पराकाष्ठा बढ़ जाने के बाद मनुष्य के मन में अपने आप ही प्रकाश का उदय हो जाता है। और स्वाध्याय के फलस्वरूप ज्योंही समाधि मार्ग में प्रवेश करता है तो –

सर्व द्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते। ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्वमित्युत।।

अर्थात् जिस समय मनुष्य के मन मे एव शरीर में, सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश की अनुभूति हो उस समय यह समझ लेना चाहिए कि पूर्ण सत्व का उदय हो गया है और सत्वोदय हो जाने के बाद सतोगुण के फलस्वरूप महाभाव का उदय हो जाता है। महाभाव में मनुष्य स्वत: ही अपने इष्टदेव को आत्मसमर्पण कर देता है। गीता मे भगवान कृष्ण ने आत्म–समर्पण के भाव को समझाते हुए ये शब्द कहे हैं–

यत्करोसि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासियत्।
यत्तपश्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्वमदर्पणम्।।

अर्थात् हे अर्जुन जो भी कुछ तुम करते हो और जो कुछ तुम खाते हो, जो कुछ तुम हवनादि करते हो और जितनी तुम तपश्चर्या करते हो वह सब कुछ मुझे सौंप दो। भगवान ने ये शब्द अर्जुन को आदेशात्मक कहे हैं किंतु सच्चा आत्म–समर्पण बिना योग के हो ही नही सकता और जो मनुष्य स्व ध्याय के बल से योग को प्राप्त हो जाता है और जब उसके अन्दर पूर्णरूपेण महाभाव का उदय हो जाता है तो उसको स्वाभाविक ही ईश्वर प्रणिधान हो जाया करता है और ईश्वर प्रणिधान हो जाने पर स्वत: ही समाधि सिद्ध हो जाती है पढ़िये भगवान पतंजलिदेव के शब्द और उन पर व्यासदेव जी का भाष्य –

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धि: यथा सर्वमीप्सितमवितथं जानाति, देशान्तरे, देहान्तरे, कालान्तरे च ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानाति।

अर्थात् ईश्वर आदि महासिद्ध है, यदि कोई व्यक्ति ईश्वर को आत्म–समर्पित करता है तो भक्ति समाधि सिद्ध हो जाती है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि साधक को अपना जीवन उत्कृष्ट बनाने के लिए क्रिया योग का अवलम्ब लेना बहुत ही जरूरी है। इस साधना को करता हुआ साधक यदि अपने युक्ताहारविहार आदि के नियमों को पूर्णरूपेण परिपक्व रखता है तो वह अवश्य ही योग के अन्तिम निष्कर्ष समाधिरूप अमरघर को प्राप्त करता है जिसको प्राप्त करके फिर कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं रहता है।

■ ■ ■

"जो महापुरुष आत्म भाव एवं आत्म चिंतन में लीन रहते हैं, वे आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी देवी देवता की पूजा उपासना आदि नहीं करते हैं, क्योंकि वे सदैव सर्वत्र अपने निज स्वरूप आत्मा का ही अनुभव करते रहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा का भेद अविद्या एवं माया से उत्पन्न हुआ है तथा कल्पित है। ब्रह्म आत्मा से भिन्न तत्व नहीं है।"

'सिद्धयोग' – हमारी प्यारी पत्रिका

प्रिय पाठकगण / भाई-बहिन,

जयगुरुदेव की!

क्षण-क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका 'सिद्धयोग' अपनी आयु के 43 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 44वें वर्ष में प्रवेश पा रही है। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्त्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ-साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र-पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किंतु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धांतिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से भी गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है – आत्मा वा अरेद्रष्टव्यः, श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः। अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्व के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान-योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो

शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात के अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमन्त्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् ने 'सिद्धयोग' परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गयी। पत्रिका के पठन-पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्गदर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है; किंतु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन हैं- **'संशयात्मा विनश्यति'** अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए 'सिद्धयोग' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि - **'स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्'** अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुमन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही, किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25-30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेवजी की कृपा का ही फल है। उदार गुरुभाई-बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से

भी निवेदन करूंगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुत: स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अत: समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें। वार्षिक शुल्क 140 रुपये हो गया है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सवाँई आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभु जी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभु जी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

इस वर्ष श्री रामनवमी का महामेला श्री प्रभु जी का प्राकट्य दिवस 10, 11 व 12 अप्रैल को श्री सिद्धगुफा में धूम–धाम से मनाया जा रहा है। साथ ही श्री सिद्धगुफा को स्थापित हुए सौ वर्ष पूरे हो गए हैं। इस प्रकार से भी यह उत्सव अधिक धूम–धाम से मनाने का निश्चय किया गया है। श्री प्रभु जी के सभी भक्तों से आग्रह है कि उत्सव में अधिक से अधिक आकर उत्सव की शोभा बढ़ाएँ व पुण्य के भागी बनें।

आपका

डॉ. दासलाल आचार्य

▣▣▣

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मति:।

परलोके धनं धर्म: शीलं सर्वत्र वै धनम्।।

'परदेश में विद्या, विपत्ति में सद्बुद्धि, परलोक में धर्म धन (सहायक) है, परंतु शील–सदाचार तो ऐसा धन है, जो लोक और परलोक दोनों में साथ देता है।' इस प्रकार शील सार्वभौम सुख का साधन है।

मरण का स्मरण रहे

हेमराज चोपड़ा, मंडी, हिमाचल प्रदेश

पानी की तलाश में गए चारों भाइयों भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव में से किसी के भी वापिस न लौटने से युधिष्ठिर की चिंता बढ़ गई। अब उन्होंने स्वयं जल स्त्रोत तक जाने का निश्चय किया। थोड़ी दूर जाने पर उन्होंने स्वच्छ, निर्मल जल का तालाब देखा। उनके चारों भाई उसी तालाब के किनारे मृत अवस्था में पड़े थे। उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। एक–एक को पास जाकर हिलाया, डुलाया किंतु कोई अन्तर नहीं पड़ा। उन्हें आगे की चिन्ता होने लगी। अब प्यास उन्हें भी सताने लगी थी। सोचा पहले जल पी लूं फिर आगे की सोचूँ। अभी जल लेकर हाथ मुँह की ओर बढ़ाया ही था कि एक कड़कती आवाज ने उन्हें रोक लिया 'युधिष्ठिर, इस तालाब का स्वामी मैं हूँ। मेरी आज्ञा के बिना तुम इससे जल ग्रहण नहीं कर सकते। तुम्हारे भाइयों ने ऐसा दुःसाहस किया था, उनकी गति तुम देख रहे हो। तुम्हें पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर देना होगा। युधिष्ठिर धर्म–परायण व्यक्ति थे। उन्होंने प्रश्न पूछने को कहा। कई प्रश्न पूछे गए, युधिष्ठिर जी ने सबके न्याय संगत उत्तर दिए। अब जो प्रश्न पूछा गया वह था 'संसार में सबसे विचित्र बात क्या है?' युधिष्ठिर जी ने सोचकर उत्तर दिया, 'मनुष्य प्रतिदिन प्राणियों को मरते देखता है किंतु सोचता है कि मरने वाले तो ये ही व्यक्ति थे मैं तो मरूंगा ही नहीं, यही सबसे विचित्र बात है। इस उत्तर से यक्ष बहुत प्रसन्न हुआ। अपने प्रश्नों के सही, न्यायपरक उत्तर मिलने से यक्ष ने युधिष्ठिर के चारों भाईयों को भी जीवित कर दिया। सच में ही हमें अपनी मृत्यु के बारे में सोच कहाँ होती है। नित्य प्रति बाल, युवा, वृद्ध हमारी आँखों के सामने से अपनी आयु भोगकर इस संसार से विदा होते हैं किंतु हम अपनी ओर से निश्चिन्त रहते हैं जैसे हमने कभी यहाँ से जाना ही न हो। मृत्यु निश्चित है, इस ओर हमारा ध्यान जाता ही नहीं।

कबीर जी की प्रसिद्धि सुनकर एक व्यक्ति उनसे मिलने उनके गाँव गया। घर में कबीर जी नहीं थे, उनकी धर्मपत्नि थी। उसने कहा वे गाँव के एक व्यक्ति के दाह–संस्कार में शमशान घाट गए हैं, वहीं मिल जायेंगे। किंतु उन्हें पहचानूंगा कैसे?, प्रश्न था। जिसके सिर पर मुकुट होगा वही कबीर होंगे, धर्मपत्नि ने उत्तर दिया। वह व्यक्ति गाँव से बाहर शमशान घाट गया, वहाँ जो कुछ उसने देखा, उससे वह घोर आश्चर्य में पड़ गया। क्या देखता है कि वहाँ जितने लोग थे वे सभी आध्यात्मिकता की, संसार की असारता की ही बातें कर रहे थे और सभी के सिर पर मुकुट थे। वह भागा–भागा कबीर जी के घर आया और उनकी धर्मपत्नि को अपनी दुविधा बताई। उन्होंने कहा जिसके सिर पर शमशान से वापसी पर भी मुकुट होगा, वही कबीर होंगे। वह फिर शमशान घाट गया। अब क्या देखता है लोग अपने घरों को लौट रहे हैं और आपस में दुनियादारी की लाभ हानि की ही बातें कर रहे हैं। उनके सिर से मुकुट गायब

थे, केवल एक ही व्यक्ति था जो अपनी ही धुन में चुपचाप चला आ रहा था। हाँ, मुकुट उसके सिर पर था। वह व्यक्ति पहचान गया यही कबीर है लपककर उनके चरणों में गिर पड़ा। कबीर जी अंतर्यामी थे। जान गए, जिज्ञासु है, सो उसे साथ लेकर घर आ गए। बहुत देर तक आध्यात्मिक चर्चा होती रही। अंत में उसने अपने मन की दुविधा और मुकुट की बात भी कबीर जी से कह दी। इस पर कबीर जी ने उसे समझाया कि भाई जब हम शमशान घाट में जाते हैं, हमें अपनी मृत्यु का स्मरण रहता है कि यह रास्ता सबके लिए है, कोई इससे बच नहीं सका है किंतु ज्योंहि हम वहाँ से वापिस लौटते हैं, यह भाव विलुप्त हो जाता है। हमारा चिंतन बदल जाता है, संसार हमारे अन्दर समा जाता है, हमारा देवत्व छिन जाता है। जो पुरुष इस अकाट्य तथ्य का स्मरण हरदम करता रहता है, वही वास्तव में देव तुल्य है, पूज्य है।

मरण का स्मरण रखने की इसलिए भी आवश्यकता है कि मृत्यु की भयानकता का सामना किया जा सके। इसका उपाय निकाला जा सके। नित्य स्मरणीय गुरुदेव महाराज जी अपने प्रवचनों में कहा करते थे (हैं) कि मरते तो कीट पतंगे, स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी इत्यादि सभी हैं किंतु मरण कैसा हो, मरण तो ऐसा होना चाहिए कि आवागमन का चक्र ही छूट जाए। प्रभु स्मरण होता रहे और उसी आनन्द में प्राण छूट जाएँ। इसके लिए वे प्रायः श्रीमद्भगवद्गीता के पंद्रहवें अध्याय के पाँचवे श्लोक का जोर देकर पाठ करते थे (हैं)–

निर्मानमोहा, जित्संग दोषा, अध्यात्म नित्या विनिवृत्त कामाः।

द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुख सञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढा पदमव्ययं तत।।

अर्थात् जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्ति रूप दोष को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूप में दृढ़ स्थिति बन गई है, कामनाएं पूर्ण रूप से नष्ट हो गई हैं, सुख दुखात्मक द्वन्द्वों से विमुक्त जन ही इस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।

श्री सद्गुरुदेव महाराज का कथन है और यह ध्रुव सत्य है कि अन्तकाल में मनुष्य जिस–जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उसका अगला जन्म भी उसी के अनुरूप होता है। मजे की बात तो यह है कि अन्त समय में भी वही भाव तो आएगा जिससे वह जीवन भर प्रभावित रहा है। योगयोगेश्वर भगवान श्री कृष्ण गीता के आठवें अध्याय में स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–

यं यं वापि स्मरन्भाव त्यजत्यन्ते कलेवरम्,

तं तमेवैति कौन्तेय, सदा तद्भाव भावि।

यह तो मान लिया कि 'अन्त मता सो गता' के सिद्धान्त के अनुसार मृत्यु के समय ही हमारा अगला जन्म तय हो जाता है। इसके कई प्रमाण भी हमारे सामने देखने में आते हैं। इच्छा भी सभी प्राणियों की यही रहती है कि हमारी सद्गति हो, हम आवागमन के चक्र से छूट जाएँ। श्री गुरुदेव भी कहते हैं कि अन्त समय में मनुष्य की केवल परमात्मा के स्वरूप में ही स्थिति

होनी चाहिए, तभी बात बनेगी। किन्तु ऐसा हो कैसे? कोई उपाय भी तो हो।

एकनाथ महाराज जी से एक सज्जन ने पूछा, 'महाराज, आपका जीवन कितना सादा, कितना निष्पाप है। हमारा जीवन ऐसा क्यों नहीं? आप कभी गुस्सा नहीं होते, किसी से लड़ाई झगड़ा नहीं, कितने शांत, कितने पवित्र हैं आप। एकनाथ जी ने उसके मस्तक की रेखा देखकर कहा, 'अभी मेरी बात छोड़ो, तुम्हारे सम्बन्ध में मुझे एक बात ज्ञात हुई है। आज से सात दिन के भीतर तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।' अब उनकी कही बात को कौन झूठ मानता। सात दिन में मृत्यु, केवल 168 घण्टे ही बाकी रहे। हे भगवान, यह क्या अनर्थ हो गया। वह मनुष्य जल्दी–जल्दी घर दौड़ गया। आखिरी समय निकट होने का आभास होने पर मनुष्य जो तैयारी करने लगता है, वह भी यह सब कर रहा था। हर समय वह ईश्वर स्मरण करने लगा। अन्ततः वह बीमार हो गया। बिस्तर पर पड़ गया। छः दिन बीत गए। सातवें दिन एकनाथ जी उससे मिलने गए। उसने नमस्कार किया। एकनाथ जी ने पूछा, 'इन छः दिनों में कितना पाप हुआ, पाप के कितने विचार आए? वह मरण आसन्न व्यक्ति बोला, 'नाथ जी, पाप का विचार करने की तो फुरसत ही कहाँ मिली। मौत सतत् आँखों के सामने खड़ी थी। नाथ जी ने कहा, 'हमारा जीवन इतना निष्पाप क्यों है, इसका उत्तर अब मिल गया न।' मरणरूपी शेर सदैव सामने खड़ा रहे तो फिर पाप सूझेगा कैसे? पाप करने के लिए भी निश्चिन्तता चाहिए। मरण का स्मरण पाप से मुक्त होने का एक उपाय है। यदि मौत सामने रहकर हर पल एहसास कराती रहे, तो फिर मनुष्य पाप किस बल पर करेगा। जब मनुष्य का जीवन पाप रहित होगा, तभी तो उसमें सद्‌विचार पैदा होंगे, तभी तो उसके मन में उस परम पिता परमात्मा के स्वरूप में स्थित होने की चाह बलवती होगी, तभी तो वह सद्‌गुरुदेव महाराज के आदेशानुसार अधिक से अधिक गुरुमंत्र का जाप करना प्रारम्भ करेगा।

यह सब होने पर क्या उसकी सद्‌गति नहीं होगी? बतलाइये तो!

■ ■ ■

"मन में भय, अशान्ति, उद्वेग और विषाद को स्थान न दो। भगवान् की दया अथवा आत्मा की पवित्रता और नित्यता पर विश्वास रखकर सदा शान्त, निर्भय और प्रसन्न रहने का यत्न करो।"

मनुष्य की सूक्ष्म चेतना से सम्बद्ध

ब्रह्मसिंह गुर्जर, (सदस्य) राज–लोक सेवा आयोग, अजमेर

मनुष्य तीन भागों में विभक्त है। एक भाग वह जो भौतिक पदार्थों का – पंच तत्वों का बना है, जिसे स्थूल शरीर कहते हैं, जिस पर आहार–विहार का प्रभाव पड़ता है और जिसका उपचार औषधियों अथवा उपकरणों से किया जाता है। दूसरा भाग वह जिसे मन, मस्तिष्क अथवा अचेतन कहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर है। चरित्र, चिन्तन एवं वातावरण का इन पर प्रभाव पड़ता है। तर्क, विवेक, विचार, विनिमय, भावोत्तेजन जैसे उपायों से इसे विकसित किया जाता है। नशीले तथा दूसरे प्रकार के रसायन भी इसे प्रभावित करते हैं। आहार का एवं क्रिया–कलाप का भी इस पर प्रभाव पड़ता है। मनोविज्ञान, मस्तिष्कीय विद्या आदि के माध्यम से इसे परिष्कृत संतुलित किया जाता है।

तीसरा भाग इन दोनों से ऊपर है, जिसे कारण, शरीर, लिंग शरीर, हृदय, अन्त:करण, आत्मचेतना आदि नामों से पुकारते हैं। इसका सीधा संबंध मनुष्य की आस्था, श्रद्धा, आकांक्षा, भावना एवं अहंता से है। उस स्तर के पाप–पुण्य वहाँ छाये रहते हैं और इन्हीं के आधार पर जीवन की अंतरंग सत्ता का प्रकटीकरण होता है। हारमोन इसी स्तर की स्थिति से प्रभावित होते हैं, इसीलिए यदि उन्हें चाहें तो संचित प्रारब्ध अथवा संग्रहित संस्कार भी कह सकते हैं। यह संचय इस जन्म का भी हो सकता है और पिछले जन्मों का भी। परिवर्तन एवं उपचार, इस स्तर की स्थिति का भी हो सकता है पर वे प्रयत्न होने उसी प्रकार के चाहिए जो आन्तरिक सत्ता की गहराई तक प्रवेश कर सकें और अपना प्रभाव उस पृष्ठभूमि तक उतार सकें।

क्या हारमोन पर नियंत्रण हो सकता है? क्या उनकी विकृत गतिविधियों को संतुलित किया जा सकता है? क्या इच्छा या आवश्यकता के अनुरूप इन्हें घटाया या बढ़ाया जा सकता है? इसका उत्तर 'हाँ' में दिया जा सकता है। पर यह समझ लेना चाहिए कि इसके लिए प्रयास वे करने पड़ेंगे जो अन्त: चेतना को गहराई तक प्रभावित करते हैं। शारीरिक आहार–विहार या मानसिक तर्क–वितर्क या उपचारों के द्वारा उस गहराई तक नहीं पहुँचा जा सकता जहाँ इन हारमोनों का मूलभूत उद्गम है। केवल आध्यात्मिक साधनाओं का मार्ग ही ऐसा है जो शरीर और मन को प्रभावित करके हारमोनों को ही नहीं और भी कितने ही महत्वपूर्ण आधारों में हेर–फेर करके मनुष्य को सामान्य से असामान्य बना सकता है।

आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा इसीलिए संभव है कि इस विज्ञान दृष्टि में सम्पूर्ण जगत, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक अविभक्त और एक रस सत्ता है। सागर की एक बूंद में भी वही

विशेषताएँ होती हैं, जो सागर की अगाध जलराशि में विद्यमान होती हैं। वस्तुतः आध्यात्म की दृष्टि से यह तुलना भी पूरी तरह संगत नहीं बैठती। आध्यात्म के विषय को वैमाविक उपमाओं द्वारा नहीं समझा जा सकता। मनीषियों का तो यह कहना है कि जो अणु में है वही विभु में है, इतना ही नहीं अणु ही विभु है। क्योंकि अणु कहने के लिए भी तो एक विभाजन परिधि खींचनी पड़ेगी, जब सारा जगत ही उस एक तत्व से संव्याप्त है तो विभाजन रेखा खींचने के लिए भी कौन–सा रिक्त स्थान बचता है। इस तथ्य को समझने के लिए और हृदयंगम करने के बाद मनुष्य के लिए कोई शोक–संताप नहीं रह जाते।

■ ■ ■

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान	–	श्री सिद्धगुफा, संवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधि क्रम	–	मासिक
3. मुद्रक का नाम	–	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	–	भारतीय
पता	–	श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा (उ.प्र.)
4. प्रकाशक का नाम	–	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	–	भारतीय
पता	–	श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा (उ.प्र.)
5. सम्पादक का नाम	–	दासलाल शर्मा
6. स्वत्वाधिकारी	–	दासलाल शर्मा

मैं दासलाल शर्मा एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

28 फरवरी 2011

दासलाल शर्मा

कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई (एत्मादपुर), आगरा

सुख टिकता नहीं – दुःख मिटता नहीं

विजय कुमार शर्मा, सहारनपुर

संसार का प्रत्येक प्राणी केवल सुख की ही कामना करता है। यह इसलिए कि जीव सुख स्वरूप, आनन्ददाता, प्रेम स्वरूप, परम पिता ईश्वर का अंश है। इस सम्बन्ध में तुलसीदास जी ने राम चरित्र मानस में लिखा है। 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी, सुन्दर सहज सुखद सुखराशि'।

जीव को अपने ही कर्म (अच्छे/बुरे) के बन्धन स्वरूप संसार में सुख–दुःख को सहन करना पड़ता है। संसार में आने से पूर्व जीव गर्भावस्था में भगवान से प्रार्थना करता है कि मुझे इस नरक से निकालो, मुझ पर कृपा करो। परन्तु संसार में आते ही जीव उन किये हुए सभी वायदों/प्रतिज्ञाओं को भूल कर मायापति की सांसारिक माया में फँस जाता है तथा जीव से अपना मुख्य कार्य 'मुक्ति' का छूट जाता है। यह संसार एक दुःखालय है। इस संसार में दीखने वाले समस्त सुखों की परिणति केवल दुःख ही हैं। अज्ञानता के कारण प्राणी अपने ही कर्मानुसार जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त नहीं हो पाता तथा संसार की उलझनों में उलझ कर रह जाता है।

भवसागर से जीव की मुक्ति का साधन केवल सच्चे सद्गुरु के श्री चरणों में ही प्राप्त होता है। आप अपने गुरुदेव के आदेशों/वचनों का पालन करते हुए अपने चित्त को परिपूर्ण परमसत्ता में स्थिर कर लें। संसार व्यवहार के संस्कार अपने चित्त में न आने दें। तभी परम तत्व की प्राप्ति होगी। रामायण में तुलसीदास जी कहते हैं कि 'निर्मल मन जन सो मोही पावा, मोही कपट छल छिद्र न भावा।'

प्रत्येक प्राणी की यही अभिलाषा रहती है कि संसार उसके अनुकूल बना रहे, प्रतिकूल परिस्थिति कभी न आये। परंतु सदा ऐसा रहना सम्भव नहीं है और न ही उसके वश में है। यह संसार परिवर्तनशील है, जिसमें प्रत्येक क्षण अनुकूलता, प्रतिकूलता, व्यक्ति, वस्तु तथा अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। लेकिन अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर प्राणी सब कुछ जानते हुए अनजान होने का नाटक करता रहता है। यदि व्यक्ति के स्वार्थ की पूर्ति हो जाती है तो वह खुशी के मारे फूला नहीं समाता। परंतु उसे ज्ञान नहीं होता कि ऐसे सुखों के अन्त में केवल दुःख ही प्राप्त होता है।

अतः आप अपने चित्त को सुख स्वरूप, आनन्ददाता के श्री चरणों में लगा लें। फिर आप किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होंगे। प्रभु चरणों में अपनी साधना भक्ति को इतना विकसित कर लें कि 'प्रभु में इतना ममत्व भाव आ जाये कि प्रभु मेरे हैं, मैं प्रभु का हूँ। फिर

भक्त और भगवान में कोई भेद नही रह जाता, दोनों एक रूप हो जाते हैं।' इसी दृढ भाव के साथ निरन्तर प्रभु का चिन्तन करे। तो यह सारा जगत तुम्हें परमात्मा के रूप में ही आभासित होगा।' सियाराम मय सब जग जानी, करहु प्रणाम जोरि जुग पानी'। फिर हर एक में तुम्हें उसी परम सत्ता ईश्वर की झलक नजर आयेगी तथा आपका द्वैतभाव समाप्त हो जायेगा। संसार में व्यवहार करते हुए भी आपका चित्त अद्वैत चैतन्य परम तत्व में स्थित हो जायेगा।

प्राणी के चित्त में ये भाव आ जाने पर भगवान कहते हैं कि अब मैं तुझको नहीं छोडूंगा तथा उसे अपने श्री चरणों में स्थान देते हैं। साथ ही अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का भी ज्ञान करा देते हैं। फिर प्राणी के चित्त में अहंकार, राग द्वेष आदि विकारों का स्फुरण नहीं होगा। सच्चे सद्‌गुरु की कृपा से ज्ञान का अनुभव होने पर प्राणी भवसागर से पार हो जाता है।

यह सब परम पिता ईश्वर के श्री चरणों के अनुरागी सन्त/महापुरुषों की दिव्य, तेजस्वी एवं ज्ञानवर्धक वाणी को पढ़कर तथा सुनकर जो भाव हृदय में आये। उन्हीं भावों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें जो कुछ भी है वह मेरे सद्‌गुरुदेव का कृपा प्रसाद है। यदि कोई गलती है तो उसे अपना बालक मान कर क्षमा कर देना। दादा सद्‌गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी एवं योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी त्रिलोकी में जिससे जो चाहें करा लिया करते हैं और उसका श्रेय अपने प्रिय बालकों को दिया करते हैं। करण–कारण स्वयं वही सर्वशक्तिमान् सद्‌गुरुदेव हैं। ऐसा हमारे सबके देखने में प्रायः आता ही रहता है।

▣ ▣ ▣

यह संसार धर्म-क्षेत्र है

"यह संसार धर्म क्षेत्र है, नैतिक संघर्ष के लिए समर भूमि है। निर्णायक तत्व मनुष्यों के हृदयों में विद्यमान है, जहां कि ये युद्ध प्रतिदिन प्रति घड़ी चल रहे हैं। पृथ्वी से स्वर्ग तक और दुःख से आत्मा तक धर्म के मार्ग द्वारा ही आ जा सकात है। अपने शारीरिक अस्तित्व की दृष्टि से भी हम धर्म का आचरण करते हुए उस सुरक्षा की स्थिति तक पहुँच सकते हैं, जहाँ पहुँच कर प्रत्येक कठिनाई का अन्त आनन्द में होता है। यह संसार धर्म क्षेत्र है, सन्तों के पनपने की भूमि, यहां आत्मा की पवित्र ज्वाला कभी बुझने नहीं पाई है। इसे कर्म-भूमि भी कहा जा सकता है। हम इसमें अपना कार्य करते हैं और आत्मा के निर्माण के प्रयोजन को पूरा करते हैं।"

- डॉ. राधाकृष्णनन

श्री गीतामृत – पदावली

प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

अध्याय – 5

अर्जुन उवाच

कर्मों का संन्यास, पुनः तुम कर्मयोग कहते हो श्रेष्ठ।
इन दोनों में है जो उत्तम, वही बता दो मुझे यथेष्ट।।1।।

श्रीभगवानुवाच

कर्म–योग, संन्यास पार्थ! ये दोनों करते मोक्ष प्रदान।
पर इन दोनों में तू अर्जुन! कर्म योग को उत्तम जान।।2।।

इच्छा–द्वेष–रहित जो नर है, संन्यासी वह कहलाता।
द्वन्द्व–रहित वह रहकर अर्जुन! बन्धन से है छुट जाता।।3।।

कर्म–योग, संन्यास भिन्न है कहते मूढ़, न पंडित लोग।
किसी एक पर आश्रित ज्ञानी दोनों का फल करता भोग।।4।।

त्याग वहीं पहुँचाता अर्जुन! योग दिलाता जो सुस्थान।
वही देखता, जिसे दीखते ये दोनों ही एक समान।।5।।

बिना योग के महाकठिन है, हे अर्जुन! पाना संन्यास।
कर्म–योगवाला मुनि ज्ञानी जाता शीघ्र ब्रह्म के पास।।6।।

योग युक्त जो शुद्ध हृदय है, मन, इन्द्रिय जिसके आधीन।
सभी देखता अपने में जो, करता कर्म, न होता लीन।।7।।

लखते, सुनते, छूते, खाते, चलते, सोते, करते ध्यान।
'मैं कर्त्ता हूँ' कभी न कहता, पार्थ! तत्व का जिसको ज्ञान।।8।।

कहते, तजते, लेते, देते, नेत्र खोलते या सोते।
'सभी इन्द्रियाँ बरता करतीं', यही भाव उसके होते।।9।।

कर्मों को ब्रह्मार्पित करके, संग त्यागकर जो करते।
जल में कमल-पत्र के जैसे, पाप नहीं उनको लगते।।10।।

तन से, मन से तथा बुद्धि से, या केवल इन्द्रिय से भी।
आत्मशुद्धि-हित, अनासक्त हो, योगी करते कर्म सभी।।11।।

कर्मों का फल तजकर योगी, पूर्ण शान्ति को हैं पाते।
फलासक्ति, अभिलाषा वाले, योगहीन जन बँध जाते।।12।।

मन से सब कर्मों को तजकर, पुरुष जितेन्द्रिय सुख पाते।
नौ द्वारों के देह नगर में, करते कर्म न करवाते।।13।।

कर्मों का कर्तापन अथवा, कर्मों से फल का संयोग।
रचता कभी नहीं है ईश्वर, निज स्वभाव से करते लोग।।14।।

ग्रहण न करता किसी व्यक्ति के, पाप-पुण्य को ईश कभी।
ढकता है अज्ञान ज्ञान को, इससे मोहित जीव सभी।।15।।

नष्ट हुआ है स्वयं ज्ञान के, द्वारा ही जिनका अज्ञान।
परम तत्व को भासित करता, सूर्य सदृश ही उनका ज्ञान।।16।।

तन से, मन से तथा बुद्धि से, जो ईश्वर में रत रहते।
घुलते उनके पाप ज्ञान से, नहीं जन्म फिर वे लेते।।17।।

विद्या–विनय–सहित ब्राह्मण औ' गौओं का भी करते मान।
श्वान, शूद्र, हाथी के प्रति भी, पंडित रखते दृष्टि समान।।18।।

यहीं जगत् को जीत चुके वे, साम्य भाव का जिनको ज्ञान।
दोष–रहित, सम, अमर ब्रह्म है, उसमें पाते वे सुस्थान।।19।।

हर्ष नहीं प्रिय पाकर जिसको, अप्रिय पा उद्वेग रहित।
ब्रह्मवेत्ता दोष रहित वह, सदा ब्रह्म में है स्थित।।20।।

विषय–भोग से सदा दूर रह, आत्म–सुखी जो नर रहते।
ब्रह्म अनुभवी, ज्ञानी वे नित, अक्षय सुख हैं पा लेते।।21।।

(शेष अगले अंक में)

■ ■ ■

भगवान् की दया का अवलम्बन जीव के लिए परम अवलम्बन है। इससे बड़ा सहारा और कोई नहीं हो सकता। दया पर विश्वास करने वाले मनुष्यों को तो इसके प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं होती। जिसने भगवान् की दया का आश्रय लिया, वही स्नेहमयी जननी की सुखद गोद की भाँति भगवान् की निरापद गोद में सदा के लिए आ बैठा। परंतु सुदृढ़ विश्वास के बिना ऐसा नहीं हो सकता। मनुष्य विश्वास हुए बिना भगवान् की दया का आश्रय नहीं लेता, भगवान् की दया के बिना मनुष्य के मन से जगत् के विषयों का आश्रय नहीं छूटता और जब तक विषयों का आश्रय है, तब तक किसी प्रकार भी सच्चे सुख और सच्ची शान्ति की झाँकी नहीं हो सकती। विषयों का आश्रय तो दूर की बात है, विषयों की सूक्ष्म वासना भी वास्तविक शान्ति का उदय नहीं होने देती। बात सर्वथा सच है, गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी भी कहते हैं कि जब तक विषयों की झूठी मिठास का माधुर्य बना है, तब तक अमृत से हजार गुनी मीठी रामभक्ति भी फीकी ही लगती है-

तुलसी जौं लौं बिषय की मुधा माधुरी मीठि।
तौ लौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि।।

अजपा जप

ज्योतिष–कलानिधि श्री शिवनाथ मेहरोत्रा

हंस: स्यात् सारमादत्ते य: श्रोता विधिाच्छ्रु तात्।
दुग्धेनैक्यं गतात्तोयाद् यथा हंसोऽमलं पय:।।

–स्कन्द पुराण, द्वितीय वैष्णव खण्ड

जैसे दूध के साथ मिलकर एक हुए जल से हंस निर्मल दूध ग्रहण कर लेता है और पानी को छोड़ देता है उसी प्रकार जो श्रोता अनेक शास्त्रों का श्रवण करके भी उसमें से सार भाग अलग करके ग्रहण करता है, उसे हंस कहते हैं।

हमारे सामने त्रिगुणात्मक जगत् अस्तित्व में है। इसके कण–कण में भलाई–बुराई ओत–प्रोत है। हमें अपने अन्दर सुषुप्त हंसत्व को उद्बोधित करने की आवश्यकता है। हम बुराई को छोड़ सकें और अच्छाई को ग्रहण करने में सतत् तत्पर रहें इसके लिए अपने को 'हंस' बनाना होगा। हम प्रार्थना करते हैं–

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।

जो कुछ असत् है उसे त्यागकर हम सत्य की ओर बढ़ें, अन्धकार का सम्यक् परित्याग कर ज्योति का वरण करें, मृत्यु से मुक्त होकर अमृतत्व की उपलब्धि करें – यह प्रार्थना हमारी साधनात्मक भावना को ही व्यक्त करती है। हर साधक को परमहंस बनने से पूर्व हंस बनना पड़ता है। हंस वह अवस्था है जबकि हम भले–बुरे में से बुरे को छोड़कर भले को अपनाते हैं और परमहंस वह अवस्था है जब बुराई पर अन्तिम विजय प्राप्त कर भलाई में दृढ़ रूप से जम जाते हैं। अर्थात् अपने ध्येय से तादात्म्य प्राप्त कर लेते हैं।

भलाई की प्रतीक हंस अवस्था ही हंस ध्वनि या अजपा जप के रूप में व्यक्त होती है। हंस–ध्वनि को जानने के बाद श्रोता उसे ही सुनता है। अनेक शास्त्रों का अध्ययन करने पर एक मतिभ्रम उत्पन्न हो सकता है। परन्तु भगवान, इष्टदेव अथवा गुरुदेव के आश्रित को एक निश्चित वस्तु पकड़ में आ जाती है, जिसके सहारे वह भलाई–बुराई में भेद कर भलाई को अपना लेता है।

इस हंस–ध्वनि के भी कई भेद हैं। हर व्यक्ति को अन्तरात्मा की आवाज सुनाई पड़ती है, अन्तरात्मा का यह निर्देश है कि यह मार्ग भलाई का है या बुराई का, स्पष्ट एवं सर्वोच्च निर्देश होता है, कुछ लोग अन्तरात्मा की आवाज को सुनने के बाद भी विपरीत पथ पर ही बढ़ते हैं क्योंकि उन्होंने अपने में हंसत्व गुण के बदले काकत्व गुण जागृत करने का ही निर्णय लिया होता है, इस संसार में भगवान के पुजारी तो कम ही दीखते हैं, शैतान के पुजारी ही

अधिसंख्य हैं। मजे की बात तो यह है कि शैतान के पुजारी होते हुए भी लोग सद्वेश धारण कर अपने को हंस ही सिद्ध करने के इच्छुक होते हैं, पापी व दुराचारी भी अपने को गुणवान और भरोसेमन्द सिद्ध करने का नाटक रचते हैं, यही इस बात की कसौटी है कि अन्तिम तौर पर वे भी भलाई की विजय के समक्ष नतमस्तक हैं, अतः अन्तरात्मा की अन्तर्ध्वनि के श्रवण का मार्ग बन्द नहीं करना चाहिए।

एक बार मैं बड़ी दुविधा की स्थिति में था। श्री गुरुदेव जी के समक्ष पत्र द्वारा अपनी स्थिति का उल्लेख मैंने किया। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर में लिखा कि यदि तुम्हारा मन तुम्हें इस पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देता है तो तुम निश्चिन्त होकर बढ़ो। उक्त पत्र पाने के बाद मैंने पुनः मन को टटोला, जहां मन में संशय दीखा उस पथ पर बढ़ने की इच्छा ही त्याग दी, भगवान के भरोसे पर उसी मार्ग का वरण किया जिसके लिए मन तैयार मिला। कालान्तर में मैंने यह एक आस्था महसूस की कि शुद्ध मन अपना सबसे निकटस्थ परम मित्र है, इस मित्र पर भरोसा छोड़कर अन्य मित्रों का दामन पकड़ना ही मूर्खता है, शुद्ध मन ही हमारी अन्तर्ध्वनि का स्रोत है। जब तक उक्त सच्चाई को जानते हुए भी मैं अमल में न ला सका तब तक विपत्तियों से ग्रस्त ही रहा, यह जो कहा गया है कि –

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।

यह संसार का एक शाश्वत सत्य है। जहाँ शुद्ध मन हमारी सच्ची प्रेरणा और हमारी आशा का आकाशदीप है वहीं तमाच्छादित मन हमें पतन के गहरे गर्त्त में डुबो देता है। सम्भवतः हर व्यक्ति के जीवन में उत्थान व पतन के अनेक अवसर उसकी मानसिक स्थिति के प्रभाव से आते ही हैं। मजे की बात यह है कि जो लोग भलाई का पथ वरण करते हैं वे प्रायः निःसकोच होकर अपनी त्रुटियाँ व्यक्त कर देते हैं जबकि दूसरे लोग अपनी वास्तविकता छिपाकर अपने आपको महात्मा के रूप में व्यक्त किया करते हैं।

शुद्ध मन की क्या पहचान है? अपनी किस ध्वनि को हम आत्मा की अन्तर्ध्वनि समझें, किसे त्याग दें? साधन पथ पर बढ़ने के बाद इन प्रश्नों का उत्तर अन्दर से ही प्रादुर्भूत हो जाता है, एक बार साधना पथ पर सच्चे दिल से बढ़ने वाले व्यक्ति को अन्तर्ध्वनि के श्रवण में संदेह ही नहीं होता, यदि सन्देह की स्थिति हो ही जाये तो आत्म शुद्धि के लिए व्रत अथवा जप करने से अन्तर्ध्वनि की शुद्ध व्याख्या उपलब्ध हो जाती है।

शुद्ध मन की क्या पहचान है? इस प्रश्न पर अब एक अन्य दृष्टि से विचार करेंगे। मन ही वह वस्तु है जो देह व आत्मा के बीच की कड़ी है, देह का भौतिक अस्तित्व हमें दिखाई पड़ता है परंतु आत्मा का भौतिक स्वरूप यदि विवेक बुद्धि से दिखाई पड़ भी जाए तो भी उसे भौतिक रूप में पकड़ पाना सम्भव नहीं होता। परंतु मन भौतिक अस्तित्व का कुछ चिन्ह प्रदर्शित करता हुआ भी उससे बँधा नहीं होता। हमारा मन यदि हमारे मनश्चक्र अथवा मस्तिष्क के अन्तर्गत स्थित दिखाई पड़ता है, पकड़ा जा सकता है, तो भी उसका एक अंश

मात्र ही हमारी पकड़ में आता है। उसके अतिरिक्त भी उसका एक वृहद् अंश है जो विश्व भर में व्याप्त है और सामान्यतया उसके बारे में हम लोग जानने का कुछ भी प्रयास नहीं करते। अत: उसे पकड़ पाने का प्रश्न भी नहीं उठता। तथापि यदि हमें आत्म–साक्षात्कार के लिए अपनी शक्ति को विस्तृत करना है तो पहले हमें उक्त मन को पहचानना होगा, जब तक हमारी शक्तियाँ व कमियां हमें विदित नहीं होंगी न तो शक्तियों का उपयोग होगा न ही कमियों का विसर्जन। यह महत्कार्य जब हमें करना होगा तब मन का ही आश्रय पकड़ना होगा क्योंकि मन से अधिक सशक्त अथवा मन की अपेक्षा निर्बल दूसरा कोई भी तत्व नहीं है। मनस्तत्व के साक्षात्कार की साधना में हमें अपनी निर्बलता त्यागने के लिए विश्वमन में विलीन होने की साधना करनी होगी, यह साधना ही अजपा जाप की क्रिया है। यद्यपि केवल अजपा जाप ही एकमात्र क्रिया नहीं है। परंतु अजपा जाप वह क्रिया है जो सामान्य प्रयास से सामान्य व्यक्ति को भी विश्वमन में समाहित होने की योग्यता प्रदान कर देती है। अतएव अजपा जाप की पद्धति को पकड़ कर मनुष्य अपने मन को शुद्ध और प्रखर शक्तिमान बनाने के बाद अन्तर्ध्वनि को पकड़ने में समर्थ व निश्चित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि सात्विक साधना का आश्रय पकड़ा हुआ मन ही शुद्ध है। इसके समक्ष हम कोई भी समस्या रख सकते हैं व उत्तर प्राप्त कर सकते हैं। आवश्यकता नहीं है कि हम अपनी निजी समस्या का ही विवेचन इससे पूछें। साधना के साथ जब यह स्पष्ट हो जाय कि विश्वमन का ही भाग हमारा मन है तब विश्व की किसी भी समस्या का समाधान हमें अपने ही मन के झरोखे में प्राप्त होगा,

यद्यपि उपरोक्त साधना के सम्बन्ध में सत्यता का अनुभव साधक ही जान सकता है तथापि उक्त साधना की पद्धति गुरुजनों की इच्छा से ही, अपने सुकर्म का फलोदय होने पर प्राप्त होती है, तन्त्र एवं योग में अनेक प्रकार से इस पद्धति को समझाया गया है, उसके बाद भी कुछ नियम श्री गुरुदेव के मुख अथवा प्रेरणा से ही व्यक्त हो पाते हैं, यह भी एक बात है कि गुरुदेव जब इस पद्धति का प्रकाश देते हैं तो वे केवल आध्यात्मिक दृष्टि से आवश्यक पथ का निर्देश देकर साधक को उन्मुक्त विचरण के लिए छोड़ देते हैं, उसके बाद आपका काम यह होना चाहिए कि आप उस उन्मुक्त क्षेत्र में पूरी शक्ति से दौड़ें और अपने लिए आवश्यक इसत्त्व को विकसित करते जाएं, यदि आपके समक्ष सांसारिक आवश्यकतायें हैं तो वे पूर्ण होने के लिए बाध्य हैं क्योंकि योग पथ पर बढ़ने वाले साधक को पूर्ण शक्तियों की उपलब्धि होने के बाद ही आत्म–स्थिति को वरण करने का नियम है, या तो आपकी आवश्यकतायें समाप्त हो जायें अथवा पूर्ण हो जायें उसके बाद ही आप महान ज्योति में अन्तिम लय के लिए अपने मन के साहाय से उन्मुख होंगे, अतएव विश्व मन में समाहित होने की अनेक पद्धतियों में से सरलतम पद्धति अजपा जपन में समाहित होने की

साधना को पकड़ना श्रेयस्कर है।

योग–पथ के साधक सामान्यतया यह जानते हैं कि हमारे देह में अनेक नाड़ी केन्द्र हैं जिन्हें हम 'चक्र' कहा करते हैं। इन चक्रों के आश्रय में बहत्तर करोड़ नाड़ियाँ आबद्ध हैं। जो प्रसिद्धतम छः चक्र हैं उन पर विजय पाने की क्रिया षट्चक्र वेध के नाम से विख्यात है। इनमें से प्रथम चक्र अर्थात् मूलाधार चक्र में जो शक्तितत्व निबद्ध है उसे जब हम उन्मुख करते हैं तो वहाँ स्थित अन्तिम वर्ण 'स' का साक्षात्कार होता है एवं अन्तिम अर्थात् छठे आज्ञाचक्र में जब पहुँचते हैं तो वहाँ 'ह' का साक्षात्कार होता है। अतः समस्त शक्तियों के स्वाभाविक प्रत्यक्षीकरण के लिए उक्त दोनों चक्रों के 'ह' एवं 'स' वर्णों का प्रयोग स्वाभाविक अर्थात् प्राकृतिक मन्त्रवर्ण होने से योग शास्त्र में मन्त्रवत् ग्राह्य हुआ है।

इन स्वाभाविक मन्त्र–वर्णों का दूसरा पहलू यह है कि हमारे देह की स्वाभाविक क्रियायें श्वास व प्रश्वास ही हैं, जन्म से मरण पर्यन्त प्रचलित श्वसन क्रिया के अन्तर्गत हम अनजाने ही 'स' एवं 'ह' दोनों शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं, साँस जोर से खींचने पर 'स' की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देगी, साँस को जोर से बाहर फेंकने पर हुंकार अर्थात् 'ह' की ध्वनि सुनाई पड़ती है।

विश्व की सर्वमान्य स्वाभाविक शक्ति यदि 'ईश्वर' न मानी जाए तो भी 'विश्वमन' या Superconscious तो है ही, विश्व की सर्वमान्य शक्ति का सम्पर्क साधने के लिए ही 'शरीरस्थ विश्व' की स्वाभाविक शक्ति का प्रयोग किया जाता है, जो मन हमारे शरीर के अन्दर स्थित है वही विश्व व्याप्त भी है, अतः अपने अन्दर यदि हम स्वाभाविक साधना का आश्रय लेते हैं तो समस्त विश्व से स्वाभाविक ऐकात्म्य की स्थापना कर पाने में सफल हो जाते हैं। हम जो श्वास–प्रश्वास रूपी साधना कर रहे हैं इसे विश्वमन से ऐकात्म्य में प्रयोग करने की भावना मात्र हमें बनानी होगी।

जब भी हम सांस खींचते हैं 'स' एवं साँस छोड़ने पर 'ह' की जो ध्वनि बनती है यही 'सोहं' ध्वनि है। पहले साँस छोड़ें व बाद में खीचें तो यही 'हंस' ध्वनि है। यह जो श्वास प्रश्वास का नैसर्गिक नियम है यह हमें अपने बिना जाने ही हमारे जीवन लक्ष्य की ओर हमें बढ़ाता जा रहा है। जैसे समस्त ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं एवं समस्त तारे ध्रुव की परिक्रमा एक शाश्वत नियम के अधीन कर रहे हैं वैसे ही हम सभी एक श्वास–प्रश्वास नियम व्यवस्था के अन्तर्गत बँधकर अपने जीवन में मुक्ति लाभ के लिए प्रयासशील हैं। जो जन्मा है वह मरेगा ही। वैसे ही प्रत्येक जीव जो बन्धन–ग्रस्त है मुक्त होगा ही। मुक्ति एक स्वाभाविक अवस्था है, मुक्ति पाने के लिए केवल एक विशेष मनोस्थिति की आवश्यकता है कहा है–

अज्ञान हृदयग्रंथि नाशो मोक्षः इतिस्मृतः।

अज्ञान की कोई वास्तविक स्थिति तो है नहीं, अज्ञान हमारे हृदय की एक गाँठ मात्र

है. इस गाँठ का खुलना ही मोक्ष है. यह गाँठ खुल जाए यही स्वाभाविक सृष्टि का नियम है. जब तक हम इस पर ध्यान नहीं देंगे कि हमारे जीवन की वास्तविकता क्या है? तब तक हम नैसर्गिक नियमों के अधीन सुख व दुख का बोध पाते रहेंगे. सुख में भी और दुख में भी जो अनित्यतायें हैं वे अपने आप नैसर्गिक नियमों से ही हमारे जीवन में आती जायेंगी. अन्ततः उन्हीं नैसर्गिक नियमो से ही हम यह समझने में सफल होंगे कि दो प्रकार के प्रभाव सुख और दुःख वास्तव में भले व बुरे को अपनाने के परिणाम है. एक दिन यह बात भी स्वाभाविक ही समझ में आयेगी कि जिसे हम सुख मानते थे वही कालान्तर में दुःख में परिणत हो गया और जिसे हम बड़ा भारी दुःख समझ रहे थे उसी ने हमें महान सौख्य के प्रासादों में अभिषिक्त कर दिया. संसार की त्रिगुणात्मिकता का प्रभाव ही कभी सुख में दुःख और कभी दुःख में सुख की अनुभूति को प्रत्यक्ष कराने में कारण है. अतएव दुःख एवं सुख के द्वन्द्व से मुक्त होना ही 'महासुख' है. पहले ।दुःखप्रद बुरे कर्मों का त्याग आवश्यक है और बाद में सुखप्रद शुभ–कर्मों से भी अपनी आसक्ति हटा लेने की आवश्यकता प्रकृति के नियम ही समझाते हैं. इस बात को व्यक्त क ने के लिए ही कहा गया है –

अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा, विद्ययाऽमृत मश्नुते।।

मृत्यु पथ को पार करने के लिए मायिक क्रिया–कलापों को अपनाते हुए सद्विद्या अर्थात् विश्वात्मा से ऐकात्म्य बोध को अपनाकर अन्ततः अमृतत्व को प्राप्त करना होगा।

एक मिनट में 15 बार श्वास–प्रश्वास होते हैं. इस प्रकार एक घण्टे में 900 बार एवं अहोरात्र में कुल 21600 बार हम हंसमन्त्र का जप स्वभावतः ही करते हैं. दीक्षित योगी तो प्रतिदिन कुछ समय तक ध्यानपूर्वक यह जप करता है परंतु सामान्य जीव भी बिना जाने ही 'अजपा जप' करता रहता है। जानबूझकर अर्थात् संकल्पपूर्वक उक्त 'हं' 'सः' की ध्वनि का श्रवण क के हम विश्वात्मा से अपना सम्पर्क साधते हैं। हंस शब्द सुनने का तात्पर्य जहाँ अपने में हंसत्व गुण को प्रबुद्ध करना है वहीं 'सोहं' के रूप में इसके जप का अर्थ विश्वात्मा एवं निजात्मा के ऐकत्व का बोधक है। चाहे पहले 'ह', बाद में 'स' सुमिरें। इसकी वास्तविक पद्धति गुरु मुख से ही जानने का नियम है।

21600 बार जप तो हम करते ही हैं। त न्त्र–शास्त्र में इस जप को संकल्पपूर्वक ईश्वरार्पित करने की विधि बताई गइ है। योगतन्त्र के अभ्यासियों के लिए भी यह उपयोगी है। निम्नलिखित मन्त्रों के उच्चारण से प्रतिदिन प्रातःकाल में अभिहित चक्रों एवं देवताओं का ध्यान भी होगा और उनकी शास्त्रविहित संख्यात्मक जप भी अर्पित होगा–

आधारे लिंग नाभौ हृदय–सरसिजे तालुमूले ललाटे।

द्वे पदमे् षोडशारे द्विदश दशदले द्वादशार्धे चतुष्के।

वासांते बालमध्ये डफकठसहिते आदियुक्ते स्वराणां।

हं क्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदल गतं वर्णरूपं नमामि।।1।।

षट्शतं तु गणेशस्य षट्सहस्त्रं प्रजापते:।

षट्सहस्रं गदापाणे: षट्सहस्त्रकं पिनाकिन:।।2।।

आत्मनस्तत्सहस्रं च सहस्रं परमात्मन:।

सहस्रं श्रीगुरुभ्यश्च ह्येवं तानि नियोजयेत्।।3।।

हंसो गणेशो विधिरेव हंसो हंसो हरिर्हंसमयश्च शम्भु:।

हंसोऽपि जीव: परमात्म हंसो हंसो गुरुर्हंसमयश्च शम्भु:।।4।।

अहोरात्रोच्चारितं षट्शताधिकमेक–विंशतिसहस्रमुच्छ्वासनिश्वासात्मकमजपा–गायत्री मन्त्रजपं श्री गणेशब्रह्मविष्णुरुद्रजीवात्मपरमात्मश्रीगुरुभ्यो यथासंख्यं समर्पयामि।

तन्त्र – शास्त्र के अनुसार उपरोक्त पाठ के पश्चात् 108 बार हंस–गायत्री जप करना चाहिए। परंतु योग दीक्षित लोग गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट पद्धति से जप करते हैं। हंसगायत्री मन्त्र इस प्रकार है–

ॐ हंसो हंसस्य विद्महे हंसो हंसस्य धीमहि हंसो हंस: प्रचोदयात्।

उक्त श्लोकों के पाठ से योगियों को एक लाभ यह है कि विविध चक्रों में स्थित देव और अक्षरों का स्मरण तत्काल हो जाता है।

मूलाधार चक्र, लिंग–चक्र (स्वाधिष्ठान) नाभिचक्र (मणिपूर), हृदयचक्र (अनाहत), तालुमूल में स्थित चक्र (विशुद्ध), ललाट में स्थित (आज्ञा) नाम के 6 चक्रों में आज्ञा में दो पद, विशुद्ध में सोलह पद, अनाहत में बारह पद, मणिपुर में दश दल और स्वाधिष्ठान में द्वादशार्ध अर्थात् 6 तथा मूलाधार में चार पदों की स्थिति है। अजपा गायत्री द्वारा जो कुछ जप हमने 24 घण्टों में अर्जित किया है उसे विविध चक्रों में स्थित देवताओं को हम निश्चित संख्या में अर्पित करते हैं।

मूलाधार चक्र में स्थित श्री गणेशजी को	600
स्वाधिष्ठानस्थ श्री ब्रह्मा जी को	6000
मणिपूरक स्थित श्री विष्णु भगवान को	6000
अनाहत चक्र स्थित श्रीशंकर भगवान को	6000
विशुद्ध चक्रस्थ श्री आत्मदेव को	1000
आज्ञाचक्रस्थ परमात्मा को	1000
गुरुचक्र में स्थित श्री गुरुदेव जी को	1000
कुल जप संख्या	21600

यह जप सकाम, निष्काम, शक्ति–संचयार्थ अथवा मुक्ति लाभार्थ जिस भावना से

हम करते हैं, चक्रस्थ देवगण उन कामनाओं की सिद्धि अथवा मुक्ति–लाभ में उनका फल देते हैं।

विविध चक्रों के आश्रय में स्थित वर्णों को भी उक्त श्लोकों में व्यक्त किया है।

मूलाधार चक्र में 'वासांते' अर्थात् 'व' से प्रारम्भ करके 'स' तक के – व श ष स – ये चार वर्ण हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र में 'बालमध्ये' – अर्थात् ब से ल तक के – ब भ म य र ल – ये 6 वर्ण हैं।

मणिपूरक चक्र में 'डफ' अर्थात् ड से फ तक के – ड ढ ण त थ द ध न प फ – ये दस वर्ण हैं।

अनाहत चक्र में 'कठ' अर्थात् क से ठ तक के – क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ – ये 12 वर्ण स्थित हैं।

विशुद्ध चक्र में 'आदियुक्तेस्वराणां' अर्थात् अ से प्रारम्भ करके सभी स्वर – अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः – इन 16 वर्णो की स्थिति है।

आज्ञाचक्र में 'ह क्ष' ये दो ही वर्ण स्थित है। एवं मूलाधार के 'स' तथा आज्ञा–चक्र के 'ह' इन दो सिरों को पकड़ कर जपात्मक मन्थनक्रिया अजपा जाप में निबद्ध है। सृष्टि–क्रम का 'हंसः' मन्त्र ही मुक्ति क्रम में 'सोहं' हो जाता है।

▣ ▣ ▣

आवश्यक सूचना

मार्च अंक के साथ सिद्धयोग पत्रिका का शुल्क (वार्षिक) समाप्त हो रहा है। ग्राहकों को चाहिए कि मार्च तक वार्षिक शुल्क 140 रु. मनीआर्डर डाक से भेज दें 'सम्पादक सिद्धयोग के नाम से।'

साथ ही कम से कम पाँच नये ग्राहक बनाकर आश्रम की सेवा में योगदान दें।

आचार्य दासलाल
सम्पादक 'सिद्धयोग'

गुरु शिष्य दीक्षा

लेखक : अंजन जी, प्रेषक : डॉ. रुददत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

करे षट् मार्ग का शोधन तभी विज्ञान आता है।
पाप का बंधन होते ज्ञान भी दूर हो जाता है।।
गुरु का नाम होता, ज्ञान का दीपक जलाना ही।
अंधेरे को हटाना ही, सुपथ पर तो बढ़ाना ही।।

गुरु का तेज जब हो सूक्ष्म बन मन में सम जाता।
गुरु की दिव्य आभा से सभी परिवेश भर जाता।
दिखाई पड़ने लगता है, सुपथ संसार का सारा।
यही आभास होता शिवमयी बहती कोई धारा।।

गुरु शिव है, समूचे लोक का कल्याण करता है।
मिटाता ताप है, निर्जीव में भी प्राण भरता है।।
गुरु सानिध्य से उद्विग्न मन में शान्ति आती है।
गुरु की ही कृपा से क्लान्त तम् में कांति आती है।।

शिष्य को अहं से बाहर जो लाता, वह गुरु होता।
सफल यह जन्म करता है, वही सच्चा गुरु होता।।
गुरु निजताप से लोहे को जब तप में तपाता है।
वही कल्मष हटाकर, फिर उसे सोना बनाता है।।

गुरु निन्दा, गुरु अपमान से है पाप बढ़ जाता।
सुखी जीवन में जैसे ताप का संताप चढ़ जाता।

उसी से नाश हो जाता है शिष्यों का अतुल वैभव।
उसी से प्राप्त होता है, नरक का रूप वह रौरव।।

गुरु पूजन, गुरु सेवा सभी शिव के ही अर्चन हैं।
अगर हो भक्ति श्रद्धा तो सभी शिव के ही चिंतन हैं।।
गुरु हैं आचरण वाले, गुरु सर्वांश पावन हैं।
वहीं कल्याणकारी हैं दिव्यता पूर्ण तन मन हैं।।

न कोई विधि अगर हो ज्ञात तो शिव ध्यान में रखकर।
करें पूजन, करें अर्चन, करें शिवरूप को धारण।।
वे हैं सर्वज्ञ, शिष्यों के सभी भय दूर करते हैं।
वे ही हैं महाज्ञानी सभी संशय भी हरते हैं।।

उन्हें तो चाहिए ही भक्ति की पावन लहर गंगा।
हृदय मंदाकिनी बहती, जहाँ पर मन मिले चंगा।।
गुरु सच्चा, हृदय के तिमिर की अज्ञानता हरते।
गुरु ही सदुख भरे, जीवन में सभी सच्चे रतन भरते।।

▣ ▣ ▣

'सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण'

लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्ति को त्याग कर एवं शरीर और संसार में अहंता, ममता से रहित होकर केवल एक परमात्मा को ही परम आश्रय, परमगति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भाव से अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान् के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिन्तन करते रहना एवं भगवान् का भजन, स्मरण रखते हुए ही उनके आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मों का निःस्वार्थ भाव से केवल परमेश्वर के लिए आचरण करना यह 'सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण' होना है।

कैलीफोर्निया में सन् 1900 में दिया गया

स्वामी विवेकानन्द जी का भाषण

जीवन–गठन की साधनाएँ

(गतांक से आगे)

जिसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते, वह वस्तु हमें प्राप्त होगी ही। यदि हमें उसकी प्राप्ति न हो, तो जीवन दूभर हो उठेगा – जीवनरूपी टिमटिमाता दीपक गुल हो जायगा।

यदि तुम योगी होना चाहते हो, तो तुम्हें स्वतन्त्र होना पड़ेगा और अपने आपको ऐसे वातावरण में रखना होगा, जहाँ तुम सर्व चिन्ताओं से मुक्त होकर अकेले रह सकते हो। जो आराममय और विलासमय जीवन की इच्छा रखते हुए आत्मानुभूति की चाह रखता है, वह उस मूर्ख के समान है, जिसने नदी पार करने के लिए, एक मगर को लकड़ी का लट्ठा समझकर पकड़ लिया। "अरे तुम लोग पहले ईश्वर के राज्य और धर्म की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करो और शेष ये सब वस्तुएँ तुम्हारे पास अपने आप ही आ जायेंगी।" जो किसी की परवाह नहीं करता, उसी के पास सभी आते हैं। भाग्य एक नखरेबाज स्त्री के समान है; जो उसे चाहता है, उसकी वह परवाह ही नहीं करती; पर जो व्यक्ति उसकी परवाह नहीं करता, उसके चरणों पर वह लोटती रहती है। जिसे धन की कोई कामना नहीं, लक्ष्मी उसी के घर छप्पर फोड़कर आती है। इसी प्रकार नाम–यश भी अयाचक के पास ढेर–के–ढेर में आता है, यहाँ तक कि यह सब उसके लिए एक कष्टप्रद बोझा हो जाता है। सदैव स्वामी के पास ही यह सब आता है। गुलाम को कभी कुछ नहीं मिलता। स्वामी तो वह है, जो बिना उन सबके रह सके, जिसका जीवन संसार की क्षुद्र सारहीन वस्तुओं पर अवलम्बित नहीं रहता। एक आदर्श के लिए – और केवल उसी एक आदर्श के लिए जीवित रहो। उस आदर्श को इतना प्रबल, इतना विशाल एवं महान् होने दो, जिससे मन के अन्दर और कुछ न रहने पाये, मन में अन्य किसी के लिए भी स्थान न रहे, अन्य किसी विषय पर सोचने के लिए समय ही न रहे।

▣▣▣

"तुम घबराकर जब उस जाल से निकलना चाहते हो, माया को छोड़ना चाहते हो, तब अनायास ही तुम्हें मायापति भगवान् का स्मरण होता है। तुम उन्हें पुकारते हो, व्याकुल होकर उनकी टेर लगाते हो तो वे तत्काल आकर जाल काट डालते हैं और तब तुम माया को छोड़–उनकी माया उन्हें सौंपकर, परम शुद्ध आनन्दमय हो जाते हो; पर इसका साधना शुरू करनी होती है स्वार्थ–त्याग से।"

"निष्काम कर्मयोग अपनायें – जीवन सफल बनायें"

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब, जि. सिरमौर (हि. प्र.)

आज मानव आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक तापों से पीड़ित चल रहा है। परंतु प्रयत्न करने पर भी उसे इनसे निवृत्ति का मार्ग नहीं मिल पा रहा है। वैसे तापों की निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति के लिए पूर्वजों ने अनेकों ग्रन्थ लिखे हुए हैं। परंतु योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण जी महाराज की अमोघ वाणी श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में सारगर्भित योगयुक्त सन्निहित है। गीता के अट्ठारह अध्यायों में कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग का सार छिपा हुआ है। उसी प्रकार मनुष्य का शरीर कर्मयोग है। भक्ति उसके प्राण हैं तथा ज्ञान आत्मा है। कामना रहित कर्तव्य कर्मों के अनुपालन को निष्काम कर्म कहना ज्यादा उपयुक्त है। ऐसे कर्म जिनमें प्राणी का स्वार्थ, लोभ, लोलुपता, मद, अहंकार न छुपा हो। निष्काम कर्म करने से आत्मसाक्षात्कार होता है। निष्काम कर्म करने वाले को निष्काम कर्मयोगी कहा जाता है। फल की इच्छा न करते हुए जो कर्म किये जाते हैं, उन्हें निष्काम कर्म कहते हैं। यथा–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्व कर्मणि।।

(गीता 2/47)

भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र महाराज ने कहा है तेरा कर्म करने में ही अधिकार होवे। फल में कभी नहीं। तू कर्मों के फल की कामना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे।

गीता में आत्मसाक्षात्कार के दो मार्ग ही बतलाये गये हैं। उनमें ज्ञानी महात्माओं के लिए **ज्ञानयोग** तथा कर्मयोगियों के लिए **कर्मयोग** है। ज्ञानयोग निवृत्ति का मार्ग है तथा कर्मयोग प्रवृत्ति का मार्ग है। यथा–

साधन पक्व अवस्था जोई। निष्ठा द्विविध कहेउं जग सोई।
ज्ञानी ज्ञान योग अनुसरहीं। योगी कर्मयोग सन धरहीं।।

(गीता 3/3)

अतः निष्काम कर्मयोग को जानने के लिए हमें ज्ञानयोग के स्वरूप को भलीभांति समझना होगा।

ज्ञानयोग

माया संसार के हर जीव में व्याप्त है। माया त्रिगुणमयी है। सात्विक, राजस तथा तामसिक गुणों से युक्त होती है। गुण ही गुणों में वर्तते हैं। ऐसा जानकर मन, इन्द्रियों तथा

शरीर से होने वाली सारी क्रियाओं में कर्त्तव्य के अभिमान से रहित होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एक ही भाव से स्थित होने का नाम ज्ञानयोग है। इसे गीता में सांख्य योग, सन्यास तथा कर्मसन्यास आदि नामों से कहा गया है। इसमें साधक योगी अपने को परम सन्तुष्ट पाता है। उसे करने के लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं बचता। यथा-

रहे आत्म रत सन्तत जोई। और तृप्त ताही मँह होई।
आत्मतुष्ट नर रहे सुजाना। ता कहँ कछु कर्त्तव्य न माना।।

(गीता 3/17)

भगवान कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन ! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, उस काल में आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट हुआ मनुष्य स्थिर बुद्धिवाला कहा जाता है। यथा-

विषयन्ह जानि भयंकर व्याला। सब अभिलाष त्याग जेहि काला।
आत्मतुष्ट तेहि मँह रतिलावा। सोइ योगी थितप्रज्ञ कहावा।।

(गीता 2/55)

भगवान कहते हैं, उत्तम कर्म करने वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु तथा ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के भक्त मुझको भजते हैं। यथा-

कोउभौतिक सुखधनहित भजहिं। कोउ आरत जो धीरज तजहीं।
कोउ जिज्ञासु और कोउ ज्ञानी। भगतन्ह स्रेनी चार बखानी।।

(गीता, 7/16)

परंतु ज्ञानी तो मेरा साक्षात स्वरूप ही है। ऐसा मेरा मत है। क्योंकि ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति स्वरूप मुझ में भलीप्रकार स्थिर है। यथा-

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।

(गीता, 7/18)

ज्ञानयोग तथा निष्काम कर्मयोग साधन व शैली में भिन्नता रखते हुए भी उस परम पिता परमात्मा की प्राप्ति में एक ही हैं तथा दोनों ही परम कल्याण कारक साधन हैं। दोनों का ध्येय केवल परमात्म तत्व की प्राप्ति का है। इसलिए ज्ञानयोग की अपेक्षा निष्काम कर्मयोग अधिक अच्छा माना गया है।

एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।
तयोरत्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।

(गीता 5/4-2)

क्योंकि हे अर्जुन ! कर्मयोग के बिना होने वाले सन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय तथा शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मो में कर्तापन का त्याग प्राप्त होना कठिन है और भगवत्स्वरूप को मनन करने वाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। यथा –

कर्मयोग बिन करि सन्यासा। होइ कठिन कर्तापन नासा।
करि है कर्मयोग निष्कामा। पावै शीघ्र ब्रह्म सुखधामा।।

(गीता 5/6)

निष्काम कर्मयोग की सुगमता के कारण

1. निष्काम कर्मयोगी प्रवृत्ति में निवृत्ति मार्ग की पुष्टि करता है।

2. यह सारे ग्रहस्थ आश्रम वासियों को करने में सुगम है। मनुष्य गृहस्थ जीवन में रहते भी अपने सम्पूर्ण कर्त्तव्यों तथा कर्मो का पालन करते हुए परमात्मा की प्राप्ति के लिए योग मार्ग का अनुसरण करते हुए प्रयत्न कर सकता है तथा परब्रह्म को पाने में समर्थ हो सकता है। उसे परमात्मतत्व की प्राप्ति के लिए गृहस्थ आश्रम त्यागने की कतई आवश्यकता नहीं है।

3. गीता में भगवान कृष्ण जी महाराज ने स्पष्ट कहा है कि तेरा कर्म करने में ही अधिकार होवे। तू अपने कर्त्तव्य कर्मो को भली प्रकार से कर। कर्म के परिणाम की इच्छा न कर। जनमानस में कहा जाता है— **कर्म किये जा बन्दे—फल की इच्छा मत कर।**

गीता में अध्याय 2 के 47 दोहे में कहा गया है—

कर्ममात्र अधिकार तव, फल नहि किंचित नाहि।
विरत होउ जनि कर्मसन, प्रीति न रखु फल माहि।।

4. भगवान ने गीता में स्वयं कहा है कि इस अविनाशी योग को मैंने सर्वप्रथम सूर्य से कहा था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु से कहा। यथा–

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत।।

(गीता 4/1)

इस प्रकार परम्परागत इस योग को राजऋषियों ने जाना। राजा जनक ने भी इस योग को अपनाया तथा वह विदेह कहलाये। कुछ समय के लिए यही विनाशी योग लुप्त हो गया था। उसी योग को आज मैं तुम्हें (अर्जुन को) समझा रहा हूँ।

परंपरा सन आवत जोई, पावत रहे राजरेषि सोई।
कुरु नन्दन यह योग महाना, लुप्त भण्ड बहुकाल बिताना।।

(गीता, 4/2)

निष्काम कर्मयोग के बिना ज्ञानयोग भी सुगमता से प्राप्त नहीं हो सकता। इसी उद्देश्य

से श्री मद्भगवदगीता में निष्काम कर्म योग के बिना ज्ञानयोग की प्राप्ति भी दुःख पूर्वक होनी बतलायी गयी है--

कर्मयोग बिन कर सन्यासा। होइ कठिन कर्तापन नाशा।

करि हैं कर्मयोग निष्कामा। पावे शीघ्र ब्रह्म सुखधामा।। (गीता 5/6)

6. इस योग का आचरण करना अन्य योगों की अपेक्षा अत्यन्त सुगम तथा व्यवहारिक है। समस्त अवस्थाओं, जातियों, वर्गों, धर्मों, सम्प्रदायों में निष्काम कर्मयोग का आचरण निर्भयतापूर्वक आसानी से किया जा सकता है। किसी प्रकार के विशेष बन्धन, आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। निष्काम भावना से किये जाने के कारण इसमें किसी प्रकार के दण्ड इत्यादि का भी भय नहीं है। अपने विवेक से प्राणी भगवान की प्राप्ति के उपाय तो कर ही सकता है। भावना तो लगन की होती है। उसकी प्राप्ति के लिए श्रद्धा विश्वास कैसा हो उसी के अनुरूप उस परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। अतः इस ढंग सुरक्षित और सहज है।

नहि आरंभ नास तेहि माहीं। अरू फल रूप विपर्यय नाहीं।

कर्मयोग करन चाह विहाई। जन्म मरण बंधन भय जाई।। (गीता 2/40)

7. कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध के लिए आये अर्जुन को कर्म के विषय में मोहित हो जाने से ही भगवान श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया था। उन्होंने कहा यह संसार युद्ध ही है जिसमें निष्काम कर्मयोग के द्वारा कर्म करते हुए परम पद की प्राप्ति कराना ही गीता का मुख्य उद्देश्य है। गीता प्राणी को रास्ता दिखाती है। भटकाती नहीं है।

8. तत्व ज्ञान प्राप्त हो जाने से ज्ञानी को कर्म करने आवश्यक नहीं होते हैं। फिर भी लोकाचार तथा लोकशिक्षा के लिए कर्म किये जाते हैं। यथा--

करमन्ह तासु प्रयोजन नाहीं। और नहीं कछु अकरम माहीं।

सब प्रानिन्ह सनरस्वारथ त्यागी। करै सो कर्म लोकहित त्यागी।। (गीता 3/18)

सुनु अर्जुन तिहुं लोकन माहीं। मो कहं रहि करतब कछु नाहीं।

इच्छा करत लब्ध सब लहहूं। तउ मैं सतत कर्मरत रहहूं।। (गीता 3/22)

कर्म का स्वरूप

गीता में कर्मो की विस्तृत चर्चा की गई है। विभिन्न प्रकार के कर्म बतलाये गये हैं। निष्काम कर्म योग में कर्म प्रधान माना गया है। कर्म के बिना कुछ भी संभव नहीं है। कर्म तो करना ही पड़ेगा। तभी प्राणी अपनी दिनचर्या चला पावेगा। कर्मो की गति कठिन है। परंतु योग की सारी क्रियायें तो कर्मो पर ही टिकी हैं। गीता में विभिन्न प्रकार के कर्म बतलाये गये हैं। जो इस प्रकार हैं--

1. कर्म कर्म विकर्म

2. सात्विक	राजस	तामस
3. शारीरिक	मानसिक	कल्पित
4. इष्ट	अनिष्ट	मिश्रित
5. शुभ	अशुभ	शुभाशुभ
6. संचित	प्रारब्ध	क्रियमाण

किसी भी कर्म को करते समय मन की भावना कैसी है? उसी के अनुरूप कर्म बन जाते है। मानसिक भावना ही कर्मों में प्रधानता लाती है। कर्म का स्वरूप एकसा दीखने पर भी मानसिक भावना में अन्तर होने के कारण कर्मों के स्वरूप तथा परिणामों में अन्तर हो जाता है। कोई भी कर्म सामान्य भावना से किया जाता है उसे '**कर्म**' कहते हैं। उसी कर्म को जब किसी को दुःख देने के लिए किया जाता है उसे '**विकर्म**' तथा जो कर्म कामना रहित बिना परिणाम की आशा किये किया जाता है उसे **निष्काम कर्म** कहते है। यथा–

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।

बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।

भगवान ने गीता में कर्म के बारे में कहा है–

एहि लागे ममता बुद्धि विहाई। इन्द्रियमन अति सुद्ध बनाई।

अरू निष्काम कर्म करि जोई। सब विधि आसक्तिन्ह तज सोई।। (गीता 5/11)

करत कर्म जो तन मन वाचा। विहित सास्त्र अथवामन रॉचा।

जो सब कर्मन्ह हेतु बताये। अर्जुन सो एहि पांच कहाये।। (गीता 18/15)

तात्पर्य है कि शरीर, मन और इन्द्रियों द्वारा की जाने वाली प्रत्येक चेष्टा, व्यापार, अथवा किसी भी प्रकार की हलचल का नाप कर्म है। कर्म की परिधि इतनी व्यापक है कि शरीरधारियों के द्वारा किसी काल में सम्पूर्ण कर्मों का त्याग किया जाना कभी भी संभव नहीं है। यथा–

करम त्याग संभवउत नाहीं। करम करे नर छिन छिन माहीं।

प्रकृति जन्य गुन बस सब कोई, करम करन महँ परबस होई ।। (गीता 3/5)

जो तनु धरि जायेउ जग माहीं। सो सब कर्म त्यागि सकि नाहीं।

एहि कारन कर्मन्ह फल त्यागी। हुइहै सोइ त्यागी बड़भागी।। (गीता 18/11)

निष्काम कर्मयोग की विशेषताएँ–

योग: कर्मसु कौशलम् माना गया है। चूंकि शरीरधारियों द्वारा कर्म का त्याग करना बड़ा दुस्कर है तथा असंभव है। अत: निष्काम कर्मयोग ऐसी युक्ति प्रतिपादित करता है जिससे शरीर भी चलता रहे शरीर चलाने के लिए निमित्त कर्म भी होते रहें। कर्मों को करने की इसी

कुशलता का नाम निष्काम कर्म योग है। यथा–

योग समत्व बुद्धि युत होउ। पुण्यपाप त्यागै नर दोऊ।

जतन सोइ कीजै कुरुनन्दन। एहि विधि कहँ कर्म दृढ़ बंधन।। (गीता 2/50)

अतः ऐसी कौन सी युक्ति है जिसके अपनाने से प्रवृत्ति मार्ग में रहते हुए भी निवृत्तिमार्ग का फल या परमात्मतत्त्व प्राप्त किया जा सकता है। कर्मों को भुने चनों के समान कैसे बनाया जाय जिससे सारे बन्धन खुल जायें तथा कर्मफलों की प्राप्ति रुक जाय। जैसे भुन जाने पर चना उग नहीं सकता। यह युक्तियाँ निम्न प्रकार हैं–

(1) प्राणी केवल नियत कर्म करे:– मीमांसकों के अनुसार कर्म दो प्रकार के बतलाये गये हैं। 1. विहित कर्म 2. निषिद्ध कर्म। वेदों तथा शास्त्रों में विहित कर्मों की चार श्रेणियां हैं। 1. नित्य 2. नैमित्तिक 3. काम्य और 4. प्रायश्चित। निष्काम कर्म योग में (चोरी, व्यभिचार, असत्य, कपट तथा हिंसा आदि) तथा काम्य कर्मों में (स्त्री, पुरुष, पुत्र, धन तथा यश की प्राप्ति हेतु कर्म) सर्वथा त्यागने के योग्य हैं। नित्य, नैमित्तिक तथा प्रायश्चित सम्बन्धी समस्त विहित कर्मों को एक व्यक्ति द्वारा किया जाना संभव नहीं है। अपने वर्ण आश्रम के अनुसार निर्धारित कर्म तथा यज्ञ दान और तप को नियत कर्म, सहजकर्म या स्वाभाविककर्म कहा गया है। इहलोक तथा परलोक में सम्पूर्ण भोगों की लालसा सर्वथा त्यागने योग्य है। अतः नियत कर्मों का करना ही परम श्रेयस्कर इस कर्मयोग में अपेक्षित है।

एहिलागिशास्त्र विहित करु कर्मा। सोइ कर्त्तव्य रूप वरु धर्मा।

कर्मश्रेष्ठ अकरम सन माना। बिनुक्रम नहिनिर्वाह सुजाना।।

काज अकाजन्ह सबन्ह महँ, हुइहैं शास्त्र प्रमाण।

शास्त्र विहित एहि लगि करम, कीजिय पार्थ सुजाण।।

जग्य दान तप त्याज्य न कोउ। अति कर्त्तव्य कर्म जग होउ।

जे मुनिजन एहि विधि आचरहीं। तिहुं सुकर्मतेहिं पावन करहीं।।

निज निज सहज कर्म रति लावा। परम सिद्धि प्रानी सोइ पावा।

जेहि विधि सिद्धि पाइनर जोउ, पांडुसनु अब विधि सुनु सोऊ।।

(गीता 3/8, 16/24, 18/15, 18/45)

2. कर्मों में फलेच्छा का अभाव :– योग में कर्तव्य कर्मों का करना प्राणी का स्वाभाविक धर्म है। परंतु कर्म करके उसके फल प्राप्ति की कामना नहीं रखनी चाहिए। केवल ईश्वर को साक्षी मानकर अपने कर्तव्य कर्मों को करते रहना ही सर्वोत्तम है। कर्मफल की आशा से किया गया प्रत्येक कर्म निष्फल समझा जाता है। उसका प्रारब्ध नहीं बन पाता। श्रद्धा तथा निष्ठा से किये गये कर्म सदैव निष्काम कर्म होते हैं जिनके फल हमेशा सर्वोत्तम ही मिलते हैं। कर्मयोगी फल मांगता नहीं है। यद्यपि अनायास ही प्राणी वर्तमान या पुनर्जन्म में उनका फल

प्राप्त करता है।

बुद्धियोग युत ज्ञान निधाना। कर्म जन्य फल त्यागि सुजाना।

जन्म मरन भवबंध निवारी। होंइ परमपद के अधिकारी।।

गत आलंब कर्मफल त्यागी। नित्य त्रिप्त ईश्वर अनुरागी।

कीन्हेउ मैं असमति विसराहीं। करमन्ह बरति करै कछु नाहीं।।

अरपिकर्म तजिफल अभिलाषा। पाइ सान्ति केवल प्रभु आसा।

पर सकाम करमन्ह जे करहीं। कर्मन्ह बँधि उर सान्ति घरहीं।।

योगी सोइ फल आस बिनु। रहे कर्मरत जोइ।

अनल क॰, त्यागी न कोउ, योगी न्यासी होइ।।

(गीता 2/51, 4/20, 5/12, 6/1)

3. कर्मो में आर .क्ति का अभाव :– मनुष्य विषय वासनाओं का गुलाम है। विषयों पर ध्यान करते रहना उस ा स्वभाव है। उसके विषयोस्वभाव ही आसक्ति की सीढ़ियाँ हैं। वह प्रत्येक कर्म में आसक्ति की ही सीढ़ियाँ चढ़ता रहता है। इसी कारण वह पतोन्मुखी होता जा रहा है। सामान्य मनुष्य भी विषयों का सेवन करते–करते आसक्त बन रहा है। उसके आसक्त स्वभाव के कारण कामनायें नई से नई जन्म लेती रहती हैं। जब कामना पूरी नहीं होती तब उसे खीज तथा क्रोध आने लगता है। क्रोध से मन की शान्ति चली जाती है। मन अशान्त रहने से स्मरणशक्ति क्षीण होने लगती है। स्मरण शक्ति क्षीण होने से बुद्धि कमजोर हो जाती है। अन्तत: ऐसा मनुष्य अपने साधन से पतित होने लगता है। यथा–

गत आसक्ति मुक्त नर जोई। ज्ञानयुक्त सेयत चित सोई।

करन जोग कर्मन्ह मखमाना। नष्ट होंइ तेहि कर्म सुजाना।।

मोर परायन नहि रहँ विषयन्ह राखै मोह।

विषयराग सन कामना। तेहि सन उपजै कोह।।

कोइ वृद्धि समोह उपावै। जो सुमिरन सक्तिहिं भरमावै

सुमिरन सक्ति भ्रमित मति नसई। मति नति श्रेयप्रेय सब खसई।।

गीता 4/23, 2/62–62)

अत: कर्त्तव्य कर्मो में किंचित मात्र भी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।

4. कर्मो में समत्व बुद्धि :– समुद्र में छोटी–बड़ी हजारों नदियाँ गिरती हैं, परंतु समुद्र में किसी प्रकार की हलचल प्रतीत नहीं होती है। वह शान्त ही बना रहता है। इसी तरह प्राणी को जगत में रहते हुए सिद्धि असिद्धि, जय–पराजय, लाभ–हानि, सुख–दुःख आदि सभी द्वन्दों में बिना कोई विकार पैदा किये हुए, मन की एकरूपता अर्थात् समता बनाये रखनी

चाहिए। उसका यही समत्वभाव, निष्काम कर्मयोग, या समत्व नामक बुद्धि योग होता है।

विषयन्ह मंह आसक्ति नलहही। सिद्धि असिद्धिदुहुनसमरहहीं।

रहि योगस्थ कर्मरत होई। योग समत्व कहावै सोई।। (गीता 2/48)

5. सर्वत्र समान व्यवहार :– प्रायः समस्त प्राणी वर्ग अपने अपने शरीरों की देखभाल भली प्रकार से करते हैं। सुख–दुःख में भी अपने नैत्यिक कर्म नहीं भूलते। अपने शरीर के अंगों की सफाई करना नहीं भूलते तथा उनके साथ समान व्यवहार करते हैं। उसी प्रकार निष्काम कर्म योग साधक सदैव सभी प्राणियों में उस सर्व शक्तिमान ब्रह्म सत्ता का दर्शन करता है तथा सबसे यथोचित समान व्यवहार करता है। किसी से राग द्वेष, घृणा नहीं करता। यथा–

विनत विप्र वर विद्या जाके। गो गजराज स्वान स्वापा के।

सकल समान लखै जो कोई। विदु समदरसी होइहि सोई।।

जेते सुहृद मीत रिपु भारे। द्वेष बंधु साधू अधियारे।

हुइहि सबन्ह माहिं सम दृष्टा। उदासीन मध्यस्थ विसिष्टा।।

जो मम् रूप लखै चहुँ ओरी। सब जीवन्ह मंह मूरति मोरी।

सो नहिं मोर कृपा विलगाहीं। रहहुँ अगोचर मैं तेहि नाहीं।।

(गीता 5/18, 6/9–30)

अर्थात् ज्ञानीजन विद्या और विनय युक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल में भी समान भाव से देखने वाले ही होते हैं। अच्छे मनुष्य, शत्रु में, मित्र में तथा धर्मात्माओं में तथा पापियों में समान भाव रखते हैं। जो पुरुष समस्त भूतों में आत्मस्वरूप मुझे ही देखते हैं तथा समस्त भूतों को मुझ में ही देखते हैं। उनके लिए मैं अदृश्य नहीं होता क्योंकि वह सब मेरे में एकीभाव से स्थित हैं।

6. काम्य संकल्पों का त्याग– निष्काम कर्मयोगियों के लिए काम्य कर्मों का ही नहीं, अपितु समस्त काम्य संकल्पों का भी परित्याग कल्याणकारी होता है। जब संकल्प ही नहीं होगा तब काम्य कर्मरूप पेड़ भी उत्पन्न नहीं हो सकेगा। इस प्रकार परमतत्व की प्राप्ति में कोई व्यवधान नहीं होगा–

जेहि अभीष्ट संकल्प विहीना। सो नर रहे न कर्म अधीना।

ज्ञान अगन जेहि कर्म जराने। पंडित विदुजन ताहि बखाने।। (गीता 4/19)

अर्थात् हे अर्जुन ! जिसके सम्पूर्ण कार्य कामना तथा संकल्प से रहित हैं, ऐसे ज्ञान रूप अग्नि द्वारा भस्म हुए कर्मों वाले पुरुष को ज्ञानीजन भी पंडित कहते हैं।

7. कर्मों को परमात्मा के अर्पण करना तथा शरणागति भाव रखना :– निष्काम कर्म योग साधक सम्पूर्ण कर्म परमात्मा को समर्पणभाव से करते हैं। कर्म करते समय अपना

स्वार्थ, लाभ हानि का विचार नहीं करते। ऐसे कर्म सदैव सर्वलोक कल्याण के ही हुआ करते हैं। सारे कर्म पूर्ण शरणागति की इच्छा से करने चाहिए। ऐसा करने से मन में किसी प्रकार की शंका अथवा बंधन नहीं रहता। भाव रहे जो हो रहा है, वही परम पिता परमेश्वर कर रहा अथवा करवा रहा है। यथा–

हविहुत अनल ब्रह्म सब मानी। ब्रह्महि सरबस अरपै ज्ञानी।।

ब्रह्महि जीव ब्रह्म निरुपाधी। ब्रह्महिरतिगति लच्छसमाधी।।

एहि कारन करिहों जे कर्मा। खान पान मख जप तप धर्मा।।

कुन्तीसुवन दान जो कीजै। सोउ समस्त मम् अरपन कीजै।।

केवल मो महँ चित्त लगाई। पूजन नमन भगति अधिकाई।।

कहहुँ साँच पावै तू मोही। सखा परमप्रिय मानहुँ तोही।।

होइ पार्थ सब धर्मन्ह त्यागी। केवल मोर सरन अनुरागी।।

करहु मुक्त सन पापन्ह तोही। चिन्ता शोक छाँहि भजि मोही।।

(गीता 4/24, 9/27, 18/65–66)

अतः उपरोक्त भावनाओं से किये जाने वाले समस्त निष्काम कर्म मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है। इससे स्वार्थ तथा परमार्थ, व्यक्ति तथा समाज, इहलोक तथा परलोक सभी का कल्याण होता है। कामनाओं से रहित कर्म करने से सभी का कल्याण होता है। अन्त में अर्जुन को समझाते हुए, भगवान ने परामर्श दिया कि तू मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सारे पापों से मुक्त कर दूंगा। निष्काम कर्म योग का उद्देश्य मनुष्य का दैवी रूपान्तर करके परमब्रह्म के कार्य का साधन बनाते हुए सारे विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है जिससे समस्त मानव लाभान्वित तथा कृतकृत्य हो सकें।

यही कारण था कि मेरे सद्गुरु देव भगवान अकारण दयालु अपने बच्चों को सदैव यही कहा करते थे– सभी योगी बनो। प्रतिदिन तीन–तीन घण्टे मंत्र जाप तथा ध्यान किया करो। अपरोक्त रूप से वह भलीभांति जानते थे कि उनके बच्चे गृहस्थ धर्म पालन में रत हैं। उनकी सदैव इच्छा रही कि सद्गृहस्थ रहकर उनके बच्चे निष्काम कर्मयोगी बनें तथा भगवत्प्राप्ति करें।

पूज्य सद्गुरु भगवान योग योगेश्वर अनन्त विभूषित श्री श्री 1008 श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन चरण कमलों में मेरा कोटि–कोटि साष्टांग प्रणाम्।

2011 – नववर्ष के अभिनन्दन में

(त्रिभाषा–रचित (संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी)

पद्यात्मिका – स्वरचनायें

द्वारका प्रसाद शर्मा,
306–ए (अभिषेक, प्रिया–निकुंज) एलडीको–उपवन–2, रायबरेली, लखनऊ–226025
फोन नं. – 2440924, मोबा. नं. – 9415541923, 9565022443, 8004904408

(संस्कृत भाषायाम्)

कालोऽयं समुपाहरत्यनुदिनमस्मत्प्रियं वाऽप्रियम्,
संयोगं कुरुते तथा विदधते क्लेशान् वियोगात्मकान्।
जानीते न ततो वराक मनुजो कालस्य रचनामिमाम्,
एवं वर्षमतीतमभ्युपगतमहो कालप्रभावे जगत्।।1।।

कालातीतो न भवितुमर्हो शङ्करान्नापरोऽन्यः,
तेषामेवाश्रितानां भवतु यदि भवेधामास्पदं नो।
संसारे येऽनुरक्ताः कथमिह न ते दुःखदग्धा भवेयुः,
संलब्धेषु कलेवरेषु द्वन्द्वविषये को यो न शेषायितः।।2।।

वर्षे नवीने समुपागतेऽस्मिन्,
नूनं भवन्तमप्यभिनन्दयेऽहम्।
तथा प्रार्थयेऽहं भवतां कृते च,
नीरुक्–वपुर्गानमयञ्च जीवनम्।।3।।

(हिन्दी)

यही काल जो प्रिय वा अप्रिय दिन–प्रतिदिन ले आता है,
संयोगों को यही कराता और प्रियों से बिछुड़ाता है।
कालजयी की संरचना को मनुज बिचारा नहीं जानता,
कालबद्ध यह सकल विश्व है, ऐसे यह गत वर्ष व्यतीता।।1।।
कालजयी परमेश्वर के बिन, कोई अन्य न हो पाया,

उनका आश्रय परमाश्रय है, जिनसे सब कुछ सबने पाया।
संसारी जन तज उनको ही, जीवन दुश्चिन्तामय जीते हैं,
धरा नुज तन कैसे सोचें, द्वन्द्व क्लेश से हम रीते हैं।।2।।

नये वर्ष के इस शुभारम्भ में मैं,
शब्दाभिनन्दन बस कर रहा हूँ।
नीरोग तन युत, धन–मान दोनों,
जीवन रहे प्रार्थना कर रहा हूँ।।3।।

May the New Year be a Blissful one

(This is in English Verse of Sanskrit Verses)

It's the Time that conveys the news, be those pleasant or the unpleasant ones,
It's that very Time causing unions & the disunions from our dearest ones.
The poor human being does never perceive the statute of the Omnipotent Time,
Tried with the Time is the entire Universe, hence the year last has gone past again once.

None else is the Victor of Time other than the Lord of the Universe,
This resort is only the greatest resort which bestows upon ever to every one.
A temporal life shrouded with worries lead the worldly people bereft of him,
Being in human form how can one think to carry on one's own life without worry or shun.

On this auspicious beginning of the New Year
I pray my heartfelt homage to you.
May God also shower His Blessings
Of Health with wealth, name and fame unto you.

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॥

श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज

का

पावन जयन्ती महोत्सव

अपने आश्रम श्री सिद्धगुफा संवाई (आगरा) में योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल के पावन प्राकट्य दिवस के उपलक्ष्य में राम नवमी महोत्सव चैत्र शुक्ला सप्तमी, अष्टमी, नवमी तदनुसार रविवार, सोमवार, मंगलवार, दिनांक 10, 11 व 12 अप्रैल 2011 को धूमधाम से मनाया जा रहा है।

सभी गुरुभाई बहिनो से नम्र निवेदन है कि वे इस भव्य आयोजन में सपरिवार इष्ट मित्रों सहित सम्मिलित होकर श्री महाप्रभु जी का आशीर्वाद एवं सत्संग का लाभ प्राप्त करें। परम पावन सिद्धभूमि का दर्शन लाभ करें व अपने को धन्य बनावें।

जय गुरुदेव जी की !

<u>निवेदक</u>

समस्त आश्रम वासी एवं श्रद्धालु भक्त मण्डल

श्री सिद्धगुफा, सवांई (एत्मादपुर)

आगरा – 283202

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

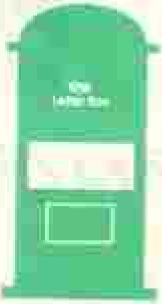

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक लिफाफों पर मोनो आवरण (1- चपत्र) का विज्ञापन
2. लेटर बॉक्सों पर उत्पाद का प्रदर्शन (मल्टीकलर)
3. मेल वाहनों पर उत्पाद का प्रदर्शन (मल्टीकलर) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह, पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड लगाकर पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के काउंटरों पर स्वतन्त्र डीलिंग की ट्राई लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति ट्राई प्रतिदिन ट्राई का मूल्य मात्र 400/-
7. संयुक्त पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर कम्पनी का विज्ञापन, दर रु. 3/- प्रति पोस्ट कार्ड। संयुक्त पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

सिद्धगुफा

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

श्री/सुश्री

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रतनलाल शर्मा के लि राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा
प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14568 सम्पादक :-आचार्य श. (डॉ.) दारा